श्रीवीतरागाय नमः ।

श्रावक वनिता-बोधिनी ।

[गृहस्थ-जैन-स्त्रियोंके कर्तव्य-कर्मका संक्षिप्त बिवरण ।]

लेखकः—

श्री. बाबू जयदयालमल्ल जैन ।

प्रकाशकः—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

मालिक, दिगम्बर जैन पुस्तकालय-सूरत ।

अष्टम आवृत्ति] वीर सं० २४७४ [प्रति १५००

श्री. स्व. श्री गंगादेवीजी मुरादाबादके स्मरणार्थ 'जैन महिलादर्श'के २७वें वर्षके ग्राहकोंको भेंट ।

"जैनविजय" प्रिन्टिंग प्रेस-सूरतमें मूलचन्द किसनदास कापड़ियाने मुद्रित किया ।

मूल्य रु. ०-१४-०

प्रस्तावना।

जीवनमें चारित्रका कितना मूल्य है, यह किसीसे छुपा नहीं। यदि मानव-जीवनका उद्देश्य यही मान लिया जाय कि कमाना, खाना और अन्तमें टांय–टांय फिस हो जाना, तो फिर मानवकी मानवता कुछ भी शेष नहीं रह सकती है। नीति है कि "काकोऽपि जीवति चिराय बलिञ्च भुंक्ते" अतः उपर्युक्त जीवनका आदर्श अत्यन्त निकृष्ट है। मानव जीवन प्राप्त कर आत्मप्रतिष्ठा, आत्मविकास और आत्मोत्थान करना ही प्रधान लक्ष्य है। जो व्यक्ति इस मनुष्य शरीरको प्राप्त कर अपने चरित्रका गठन नहीं करता है, सदाचार पूर्वक जीवन व्यतीत नहीं करता है, वह ऐसे ही इस जीवनको बरबाद करता है। नर और नारी दोनोंको समान रूपसे अपने चारित्रका उत्थान करना चाहिये।

आजके भौतिक युगमें, जब मनुष्य अपने चारित्रकी उपेक्षा कर रहा है, नारी भी इस अपवादसे अछूती नहीं है। उसने भी आहार-विहार, रहन-सहन, खान-पानमें ढिलाई करदी है। होटलोंका भोजन, सड़े–गले पदार्थ पुरुषोंके साथ नारियोंको भी अच्छे लगते हैं। जो नारियां आदर्शकी मूर्त्ति थीं, जिनके बलपर समाज टिका हुआ था और जिनकी प्रेरणासे समाजमें गति थी, समयके प्रभावसे उन्हींमें शैथिल्य आगया है। अतः इसे दूर करनेके लिये ऐसे साहित्यकी नितान्त आवश्यकता है, जिससे विवेक जागृत होकर नारियोंके चरित्रमें स्थिरता आवे। प्रस्तुत पुस्तक इसी प्रकारके साहित्यमेंसे एक है।

इसके लेखक श्री० बा० जयदयालमल्लजी हैं, इन्होंने स्त्रियोंके लिये जानने योग्य प्राय: सभी विषयोंका संकलन कर दिया है। इसका प्रत्येक प्रकरण अमूल्य है, इसके अध्ययनसे बहनें नारी पर्यायको सफल बनानेमें समर्थ हो जायंगी।

पहले स्त्री पर्याय प्रकरणमें—लेखकने नारीकी महत्ताका सुन्दर चित्रण किया है। गृहस्थीके लिये जितना महत्त्व पुरुषको दिया जा-सकता है, उससे भी कहीं अधिक नारीके लिये। खान—पानकी शुद्धिका सारा दायित्व गृहिणीका है। संयमियोंको भोजन कराना, सत्पात्रोंको चारों दान देना नारीके ऊपर ही अवलम्बित है। अतएव स्त्री और पुरुषमें समानताका व्यवहार होना आवश्यक है। लेखकने इसी लिये लिखा है कि "जो स्त्री-पुरुष प्रेमसे नहीं रहते वे नर्कसे भी कठिन कष्ट उठाते हैं। वे दम्पत्ति जीवनमें आनन्द नहीं उठा सकते, फिर भला परमार्थ तो कर ही कैसे सकते हैं?" इससे स्पष्ट है कि लेखकको आजका उच्छृंखलता पूर्ण वातावरण बिल्कुल पसन्द नहीं। क्योंकि वर्तमानमें कुछ ऐसी दूषित हवा चली है जिससे सभी घरोंमें कलह देखी जाती है। पुरुषका व्यवहार नारीको खटकता है और नारीका व्यवहार पुरुषको; परस्पर दोनों ही ओर असन्तोष है, जिसका परिणाम अशान्ति है।

दूसरे प्रकरणमें—स्त्री शिक्षा पर विशेष जोर देते हुए बताया है कि नारी शिक्षाके अभावमें पुरुष समाजका विकास करना बिल्कुल असंभव है। क्योंकि समाजके विकासका दायित्व पुरुषोंकी अपेक्षा महिलाओंपर अधिक है तथा समाजके विकासमें जितना योग दान

नारी देसकती है, पुरुष नहीं। क्योंकि पुरुष समाजका पोषण नारीकी गोदमें ही होता है।

तीसरे प्रकरणमें—स्त्रियोंकी दिनचर्या बतलाई गई है। इसमें प्रातःकालसे लेकर सन्ध्याकाल तकके स्त्रियोंके समस्त कृत्योंका वर्णन किया गया है। श्रावकके लिये तीन बातोंका होना नितान्त आवश्यक है—जल छानकर पीना, देवदर्शन करना और रात्रिभोजनका त्याग करना। यदि ये तीनों बातोंको श्रावक न पाले तो वह वस्तुतः जैनी कहलानेका अधिकारी नहीं। लेखकने इस तृतीय प्रकरणमें उपर्युक्त तीनों बातोंको विस्तारसे दिखलाया है। नारीको किसप्रकार अपने दिवसको यापन करना चाहिये तथा कौन कौन कृत्य करणीय हैं, बतलाया गया है। चौकेकी स्वच्छता तथा उसकी शास्त्रीय विधिको बड़े सुन्दर ढंगसे बताया है। हां, इस प्रकरणको उपयोगी बनानेके लिये मध्याह्नकालमें कुछ करणीय शिल्प सम्बंधी बातोंका जिक्र अवश्य रहना चाहिये था, यह कमी खटकती है। वस्त्र समस्याको हल करनेके लिये चर्खा कातनेपर भी जोर देना चाहिये था। बहनोंको प्रति दिन एक—दो घण्टे चर्खा कातनेके लिये तथा पढ़ी लिखी देवियोंको साहित्य सेवाके लिये कुछ समय अवश्य निकालना चाहिये। इससे स्वपर कल्याण होगा।

चौथे प्रकरणमें—ऋतुक्रिया और पांचवेमें मिथ्यात्व निषेध पर विचार प्रकट किये गये हैं। मिथ्यात्वके समान आत्माका अहित करने वाला अन्य कोई नहीं। देवियां कुसंगति या अन्य प्रलोभनोंमें फंस कर कुदेवोंकी पूजनमें लगजाती हैं। यह मिथ्यात्व आत्माके

लिये बड़ा हानिकर है। अतएव देवियोंको इसका त्याग अवश्य करना चाहिये।

छठवें प्रकरणमें विधवाओंका कर्त्तव्य—बताया गया है। आज लोग शीलके साथ खिलवाड़ करना चाहते हैं, तथा सरकार भी अनेक भद्दे-भद्दे प्रस्ताव पास कर उसे प्रोत्साहन दे रही है, अतः इस प्रकरणसे देवियां शीलका वास्तविक पाठ पढ़ सकती हैं।

सातवें प्रकरणमें—प्रत्येक गृहस्थके लिये जानने योग्य सूतक-पातकका निर्णय है। इस प्रकार ग्रन्थकारने सागरमें सागर भरनेका प्रयत्न किया है।

पुस्तककी भाषा अपरिमार्जित और अविकसित है। आजके भाषाप्रेमी पाठकोंको संभवतः भाषा मोहित नहीं कर सकेगी। किन्तु इतना सुनिश्चित है कि इस कुढंगे कलेवरमें पुस्तककी आत्मा पूर्ण-रूपेण आभासित है। आशा है बहनें इससे पूर्णलाभ उठावेंगी। इस पुस्तककी लोकप्रियताका प्रभाव इसके अनेक संस्करणोंका निकल जाना है। इस नवीन संस्करणकी १००० कापीके प्रकाशनका खर्च श्री. स्व० गंगादेवीजी मुरादाबाद निवासिनीकी ओरसे दिया गया है। आगे आपकी संक्षिप्त जीवनी भी दी गई है।

जैन बालाविश्राम आरा। — साहित्य सेविका— ब्र० पं० चन्दाबाई जैन।

संक्षिप्त परिचय-

स्व० श्री० गंगादेवीजी-मुरादाबाद।

इस परिवर्तनशील संसारमें यदा-कदा परोपकारी व्यक्ति पैदा होते रहते हैं। श्रीमती गंगादेवी मुरादाबाद निवासिनी भी संसारकी उन्हीं जाज्वल्यमान तारिकाओंमेंसे एक थी। आपका जन्म एक उच्च खानदानमें हुआ था। आपके पिताका नाम श्रीमान पं० मुकुंदराम था; जो अपने समयके ख्यातनामा विद्वान् थे। माता पिता इस होनहार कन्याको प्राप्तकर फूले न समाते थे। इसलिये इस कन्याका पालन-पोषण बड़ी सावधानीसे किया गया था। माताकी दुलारी पुत्री पिताके अटूट स्नेहको प्राप्तकर दोजके चन्द्रमाके समान बढ़ रही थी। सन्तानके प्रति अपने दायित्वको निभाना बहुत कम माता-पिता जानते हैं। किंतु हमारी चरित नायिके श्री गंगादेवीके माता-पिता उक्त-लांछनसे बरी थे। उन्होंने पुत्रके समान अपनी इस कन्याको शिक्षा प्रदान की, और सब प्रकारसे योग्य गृहिणी और माता बनानेका यत्न किया।

श्री गंगादेवी जो कि विद्याध्ययनमें रत थीं, संसारसे प्राय: अपरिचित और अभ्यासमें लीन थीं। कुशाग्र बुद्धि होनेके साथ-साथ आप सरस्वतीकी उपासनाके लिये श्रम भी करती थीं। बचपनसे ही आपमें यह आदत थी कि किसी भी कार्यको खूब सोच समझकर सतर्कतासे करना;



श्रीमती स्व० गंगादेवीजी जैन,
धर्मपत्नी श्री० बाबू बांकेलालजी जैन और पूज्य माताजी,
स्व० बाबू कालीचरणजी जैन एडवोकेट–मुरादाबाद।
स्वर्गवास—ता० २६-१२-४६.

"जैन विजय" प्रि. प्रेस, सूरत।

तथा श्रमपूर्वक कार्यको पूरा करना। बिना श्रमके आप किसी भी कार्यको करना, अनुचित समझती थीं। आपकी यह लग्न जीवनके अंतिम क्षण तक कार्य करती रही।

आपका विवाह मुरादाबाद निवासी श्रीमान् बा० बांकेलाल-जीके साथ हुआ था। विधिका विधान विचित्र होता है, आप अपने विचारवान् गुणज्ञ पतिकी सेवा बहुत कम कर पाईं और असमयमें मात्र २१ वर्षकी आयुमें बाबू बांकेलाल इस असार संसारको छोड़ चल दिये।

इस अटूट दुःखके पहाड़को श्रीमती गंगादेवीने बड़े धैर्यके साथ सहन किया। उस समय आपकी गोदमें दो वर्षका एक बालक था, जो पिताके समान होनहार, कुशाग्रबुद्धि और माताके समान स्नेहशील एवं कोमल प्रकृति था। बेचारी माताने बच्चेके भोले मुख और उसके तोतले बचनोंको सुनकर अपने वैधव्यको काटनेका निश्चय किया। आपकी धार्मिक रुचि भी दिनोंदिन बढ़ती गई, तथा श्रीमती पं० ब्र० चन्दाबाई आरा तथा श्रीमती मगनबाईजी बम्बईके संसर्गने तो इस प्रवृत्तिको और भी कई गुना कर दिया। आपने अपने पुत्रका नाम कालीचरन रखा। बड़ा होने पर इसका विवाह संस्कार बड़ी धूम-धामसे किया। पुत्रकी शिक्षामें माताने जरा भी ढिलाई नहीं की और उसे उच्चकोटिका विद्वान् बनानेका प्रयत्न किया।

श्री कालीचरन भी माताके वात्सल्यको प्राप्त कर शिक्षा पाने

निवेदन।

अपने नामको सार्थक करनेवाली यह 'श्रावक वनिताबोधिनी' पुस्तकका प्रथम प्रकाशन कोई ४०—४५ वर्ष पहले स्वर्गीय दानवीर जैन कुलभूषण सेठ माणिकचन्द्रजी हीराचंदजी जे० पी० बम्बईने किया था, फिर आपने इसकी दूसरी, तीसरी आवृत्ति भी प्रकट की थी, बादमें आपके स्वर्गवास हो जानेपर इसकी चतुर्थ, पंचम व छठी आवृत्ति आपकी विदुषी पुत्री श्री० जैन महिलारत्न पं० मगनबाईजीने प्रकट की थी और आपका भी स्वर्गवास हो जानेपर इसकी ७ वीं आवृत्ति श्री जैन महिलारत्न पं० ललिताब्हेनने प्रकट की थी जो खतम होनेसे इसकी बड़ी मांग आती रहती थी इसलिये इसकी यह आठवीं आवृत्ति प्रकट होनेकी बड़ी आवश्यकता थी जो आज प्रकट हो रही है।

आज पं० ललिताबहिन भी नहीं हैं अतः यह आवृत्ति श्री० ब्र० पं० चंदाबाईजीकी सूचनानुसार हम प्रकट कर रहे हैं। सारी जैन स्त्रीसमाजमें सुलभतासे इसका अधिकाधिक प्रचार हो इसलिये इसबार यह पुस्तिका "जैन महिलादर्श" के २७ वें वर्षके ग्राहकोंको स्वर्गीय श्रीमती गंगादेवीजी मुरादाबाद नि० की ओरसे भेंटमें दी गई हैं। तथा कुछ प्रतियां विक्रयार्थ भी निकाली गई हैं।

यह पुस्तक गृहस्थ महिलाओंके लिये जीवन नौकारूप है। इसमें कन्याशालासे लेकर जैन श्राविका होने तककी सब शिक्षायें वर्णित की

गई हैं अतः यह प्रत्येक कन्याशाला व आश्रमोंके पाठ्यक्रममें भी रखने योग्य है। तथा प्रत्येक स्त्रीको स्वाध्याय करने योग्य तो है ही। इस-प्रकार यह श्रावक वनिताबोधिनी पुस्तकका बहुत प्रचार हुआ है और आगे भी अधिकाधिक प्रचार होनेकी पूर्ण आशा है।

श्री० ब्र० पं० चंदाबाईजी संपादिका "जैन महिलादर्श" आराने ही यह पुस्तक 'दर्श' के ग्राहकोंको भेंटमें देनेकी व्यवस्था करवा दी है अतः जैन स्त्री समाज व 'दर्श' के पाठक आपका जितना भी उपकार मानें कम है। निवेदक-

सूरत वीर सं० २४७४
आश्विन वदी १
ता० १९-९-४८

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
—प्रकाशक।

विषय-सूची।

नोट—इसके अतिरिक्त प्रत्येक प्रकरणके अन्तर्गत बहुतसी ऐसी२ बातें भी लिखी गई हैं, जो स्त्रियोंके लिये अत्यंत उपयोगी और ग्रहण करने योग्य हैं।

चेतावनी।

जागोरी जैन बहिनों, कुछ तो भला कमाओ।
मानुष जनमको पाके, मत व्यर्थ ही गमाओ ॥ १ ॥
चौरासी पार करके, आई कहीं ये बारी।
भाग्योंसे मिल गया है, सार्थक इसे बनाओ ॥ २ ॥
कुछ पापके उदयसे, नारीका जन्म पाया।
उसको समाज-हित कर, सब भांतिसे बनाओ ॥ ३ ॥
प्राचीन जैनियोंका, साहस घटाया तुमने।
इस उच्च जातिको तुम, नीचा न कर दिखाओ ॥ ४ ॥
किस नींद सो रही हो, निज धनको खो रही हो।
संसारकी सराँमें, मन ज्ञान-धन लुटाओ ॥ ५ ॥
माता पिता कुटुंबी, सम्बन्धी लोग जितने।
भारतसे भी विनती, कर जोड़के सुनाओ ॥ ६ ॥
विद्या दो हमको माता, शिक्षा दो हमको भाई।
बिन ज्ञान हमको मूर्खा, मत जानकर बनाओ ॥ ७ ॥
निज स्वार्थमें कमीका, कुछ डर न दिलमें करना।
कन्या भी होवे विदुषी, यह ख्याल दिलमें लाओ ॥ ८ ॥
धर्मज्ञ विदुषी होकर, हम भी करेंगी सेवा।
संसार-यात्री पदको, जलदी सफल बनाओ ॥ ९ ॥
इस भांति विनती करके, चेतोरी जैन बहिनों।
होवे सफल मनोरथ, जिन-वाणी शरण आओ ॥१०॥

—श्री० ब्रह्मचारिणी पं० चन्दाबाईजी, आरा।

श्री वीतरागाय नमः ।

श्रावक-वनिताबोधिनी ।

प्रथम प्रकरण ।

स्त्री पर्याय ।

दोषरहित गुणगण सहित, चौबीसों जिनराज ।
मन वच तनकर नमत हों, सिद्ध होनके काज ॥
प्रणमूं श्रीगुरुके चरण, जे निर्ग्रंथ सज्ञान ।
पुनि बन्दौं जिनधर्मको, मिथ्या-तम हर-भान ॥
काल दोषके हेतुसे, मति गति भई अति हीन ।
श्रद्धा ज्ञानाचरण तप, दिन दिन होत मलीन ॥
उत्तम ज्ञातिन मध्यम लखि, क्रिया अधिक निकृष्ट ।
श्रावक वनिता बोधिनी, लिखूं सबन हित इष्ट ॥

इस संसारके सारे जीव सुखका लाभ और दुःखका नाश चाहते हैं। ऐसा कोई भी जीव नहीं जो दुःखसे डरकर सुखकी इच्छा न करता हो; परन्तु प्रायः सारे ही जीव सुख प्राप्त करने और दुख दूर करनेका ठीक कारण न जानने तथा विरुद्धाचरणसे नाना भांतिके शारीरिक और मानसिक दुःखोंसे दुखी होरहे हैं। फिर शास्त्रोंमें कहे हुए नर्क आदिके घोर दुःखोंको तो याद करनेसे ही कलेजा कांप उठता है।

सचमुच यदि विचार करके देखा जाय तो धर्म धर्म चिल्लाने-वाले सब जीव धर्मके स्वरूपको ही नहीं जानते, जिससे अंधोंकी नांई भटकते और अनेकों दुःखोंसे टकराते हैं, इसी कारण श्रीगुरुने अपनी बुद्धिसे धर्मका उपदेश देकर सच्चे सुखकी प्राप्तिका उपाय बताया है, उसीके अनुसार यहांपर कुछ लिखा जाता है, आशा है हमारे भाई और बहिनें इसपर ध्यान देंगे।

आत्माके स्वभावको धर्म कहते हैं। इस धर्मको जानकर इसमें आचरण करनेसे ही दुःखका नाश होकर सच्चा स्वाधीन सुख मिलता है, इसे सब बुद्धिमान निर्विवाद स्वीकार करते हैं। सारांश यह कि विना धर्मके सुखकी प्राप्ति होना असंभव है।

आत्माका स्वभाव–धर्म (रागद्वेष रहित देखना जानना) अनादि कालसे, हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील और तृष्णा आदि पाप-कर्मरूप प्रवृत्तिके कारण मलिन–राग द्वेष-रूप होरहा है, इसलिए उसे शुद्ध कर-नेका–पाप छोड़ अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और संतोषरूप प्रवर्तनेका उपदेश हमारे आचार्योंने जहां तहां दिया है. तथा आत्माके धर्मको घातनेवाले पांच पापोंके त्यागको धर्म कहा है। क्योंकि अहिंसादि धर्मोंके धारण करनेसे ही हम संसारके दुःखोंसे छूट निजानन्द और परमात्म दशाको प्राप्त हो सच्चे सुखी हो सकते हैं। रत्नकरण्डश्राव-काचारमें कहा है कि:–धर्म वही है जो नर्क, पशु आदि कुगतियोंके असह्य और निकृष्ट दुःखोंसे निकाल स्वर्ग मोक्षके उत्कृष्ट सुखोंको प्राप्त करावे। इसके सिवा आत्माके स्वभावको छोड़ वास्तविक और सच्चा धर्म और कुछ है ही नहीं। इसी आत्माके स्वभावकी प्राप्ति

करलेना यथार्थ धर्म-पालन है। जिन उपायोंके करनेसे यह जीवात्मा अनादिके कर्मरोगसे निवृत्त होकर रागद्वेष-रूप अशुद्धताको छोड़ शुद्ध परमात्मा हो, उन्हीं उपायों-कारणोंका नाम व्यवहार धर्म है। इसीके अनुसार आचरण करना ही हमारा पुरुषार्थ है। इसीलिए यहांपर व्यवहार धर्मका वर्णन किया जाता है, क्योंकि यही व्यवहार धर्म निश्चय धर्मकी उत्पत्तिका कारण है।

इन्द्रियोंकी लम्पटता द्वारा उत्पन्न हुए पंच पापोंकी प्रवृत्ति तथा क्रोधादि चारों कषायोंकी उत्पत्तिको रोकनेवाला यह व्यवहार धर्म ही है जो मुनिव्रत तथा श्रावक व्रतके भेदसे पालन किया जाता है। मुनिधर्म चारित्र रूपमें १३ प्रकारका है। पंच महाव्रत, पंच समिति और तीन गुप्ति। पुनः श्रावक-व्रत द्वादश भेद रूप है। पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत। ग्यारह प्रतिमारूप भी श्रावकधर्म है। इस स्थान पर श्रावक तथा मुनिव्रतका व्याख्यान करनेसे पुस्तक बहुत बढ़नेके सिवाय इष्ट प्रयोजनकी हानि होना संभव है, इसलिये इस विषयको यहीं समाप्त कर आगे चलते हैं। जिनको इसका पूरा ब्योरा मालूम करना हो वे मूलाचार आदि आचार-शास्त्रोंसे ज्ञात करें।

निश्चय रहे कि जो पुरुष-श्रावक-व्रतकी ११ प्रतिमाओंका भलिभांति पालन नहीं कर सक्ता वह मुनिव्रत धारण करने योग्य कदापि नहीं है। इसी प्रकार श्रावकव्रत पालनेकी योग्यता तभी हो सक्ती है जब पहिले मिथ्यात्व, अन्याय, और अभक्ष्यका * त्याग किया जाय।

१-कुदेवादिका पूजना। २-सप्त व्यसन सेवन करना। ३-अष्टमूलगुण नहीं पालना। * मद्यादिकका भक्षण करना।

जो स्त्री व पुरुष इन महान पापोंका सेवन करता हुआ भी अपनेको व्रती श्रावक कहता है वह मानो अक्षर-शत्रु पुरुषोंको पंडित बताता है, अतएव जो स्त्री व पुरुष सच्चे सुखको चाहते हैं, उनको ये तीनों दोष सर्वथा त्यागने योग्य हैं।

वर्तमान कालमें गृहस्थाश्रमकी अवस्थाको देख खेदपूर्वक कहना पड़ता है कि इस विकराल पंचम कालके पापमय समयमें, यह तीनों दोष, जैन जातिमें दिन पर दिन बढते ही चले जा रहे हैं और गृहस्थोंका क्रियाकाण्ड इतना बिगडता चला जा रहा है कि जिसका वर्णन करते " अपनी जांघ उघारिये, आप हि मरिये लाज " की कहावत चरितार्थ होती है। यही कारण है कि आज कल मुनियोंका सद्भाव तो दूर रहा, प्रतिमाधारी त्यागी संयमी पुरुषोंका मिलना भी दुस्तर प्रतीत होता है। शास्त्रोंके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि प्राचीन समयमें मुनिगण स्थान स्थानपर घूम उपदेश देते थे जिससे धर्मकी प्रभावना और उन्नति होती थी। उस समयके क्रियाकाण्ड ज्ञाता गृहस्थोंके यहां उन्हें शुद्ध आहार मिलता था। गृहस्थ लोग जानते थे कि साधु संयमीको आहार कराये विना स्वतः आहार करना गृहस्थधर्मके विरुद्ध है। इसीलिये वे भोजन करनेके पहिले द्वाराप्रेक्षण (प्रासुकजलसे भरा हुआ पात्र हाथमें ले द्वारपर खड़े हो सुपात्र अतिथिकी राह देखना) करते और जब किसी सुपात्र सज्जन या साधुको आहार दान दे लेते तो अपना अहोभाग्य समझते थे। यदि किसी सुयोग्य श्रावक या साधुको भोजन देनेका संयोग न आता तो अपने भाग्यको बहुत ही कोसते और साधुओंके भोजनका समय निकल जानेपर आप भोजन

करते थे। उन्हें यह भले प्रकार विदित था कि गृहस्थका घर षट्-कर्मोंकी आरम्भी हिंसाके कारण स्मशानतुल्य है, और विना अतिथि-संविभागके कदापि सफल और शुद्ध नहीं हो सकता है।

वर्तमानमें जैनियोंकी खानपानक्रिया इतनी बिगड़ गई है कि यदि कर्मयोगसे थोड़ा भी संयमधारी क्रिया-कांडी भोजन करनेवाला किसीके घर आजावे तो उसके भोजन योग्य सामग्रीका मिलना कठिन हो जाता है। यदि सामग्री भी मिल जाय तो क्रियापूर्वक बनानेवालोंकी न्यूनता कैसे पूरी हो? इस अवस्थामें यदि दो चार कर्मकांडी साधर्मी सज्जन किसी स्थान पर पहुंच जायँ तो उन्हें शुद्ध भोजन कैसे मिले? यही बड़ी कठिनाई है। ऐसे ही अनेक दोषोंसे इस निकृष्ट कालमें साधुव्रत धारण करना कठिन हो गया है—कोई क्षुल्लक ऐलकके व्रत धारण करनेका साहस नहीं करता (खेद)।

त्यागी महान् पुरुषोंके अभाव होनेसे जैन जातिसे उपदेश उठ गया, जिससे मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्यका जोर बढ़ गया। जो पुरुष संसार और शरीरके भोगोंसे ममत्व घटाना चाहते हैं वे शुद्ध खानपानकी योजना न देख घर ही में रहकर श्रावक व्रत पालकर संतोष करते हैं; क्योंकि धर्मात्माओंको राग द्वेष मेटनेवाली सुबुद्धिको उत्पन्न करनेवाली शुद्ध क्रिया और आहार विधिकी भी आवश्यकता है। मलिन बुद्धि होने और धर्ममें अरुचि होनेका एक कारण शुद्धाचरणकी हीनता है। निर्धनता व मूर्खता होनेका एक कारण विकृत भोजन है! दुःख रोग आदिकी वृद्धि भी खानपानकी भ्रष्टतासे होती है, ऐसा जान जैनीमात्रको क्रियाकांड और खानपान पर लक्ष्य देना चाहिये, तथा

हीनतायें दूर करना चाहिये, परन्तु समयका प्रवाह और उसकी आवश्यकता भी हमें भूलना न चाहिये।

रसोई आदिकी क्रिया स्त्रियोंके आधीन है, यदि स्त्रियां शिक्षिता हों तो रसोई अवश्य ही शुद्ध तैयार हो, तब उन्हें कोई अशुद्धाचरणका उलाहना कैसे दे? अशिक्षिता स्त्रियां अकेला खानपान ही क्या, गृहस्थीका प्रत्येक कार्य्य अविचारपूर्वक करती हैं। एक तो वे मूर्ख और उतावली हुआ ही करतीं हैं, फिर यदि अशिक्षिता भी हों तो कहना ही क्या? वे गृहस्थीका प्रत्येक कार्य्य चक्की, चूल्हा, झाड़ना, बुहारना, पानी छानना और ओखली आदिको—ठीक ठीक विधिपूर्वक नहीं करतीं; शुद्धता और दयाका भी विशेष विचार नहीं रखतीं।

इसमें उन अकेलीका दोष नहीं है, पुरुषोंकी मूर्खता तो उनसे भी बढ़कर है। पुरुषोंने स्त्रियोंको संतानोत्पत्ति करनेवाली मशीन समझ रक्खा है, उन्हें सोचना चाहिये कि स्त्रियां उनके गृह संसार रचनेमें विश्वकर्मा हैं और वे तो केवल बाहरसे द्रव्य कमा ला देनेवाले हैं, स्त्रियां जैसा शुद्ध अशुद्ध भोजन रांध देती हैं पुरुष उसे ही बड़ी मौजसे खा पीकर संतुष्ट होते हैं फिर स्त्रियोंको क्या पड़ी है, जो नाना प्रकारसे शोध बीनकर धीरता और सावधानीसे रसोई बनावें तथा और और कार्य भी सावधानी और शुद्धतापूर्वक करें? कभी कभी तो ऐसा देखा जाता है कि स्त्रियां तो शुद्ध आचारयुक्त होती हैं और अपने रसोई आदि कार्योंको इस प्रकार करती हैं जिसमें हिंसादिक दोष टलें और संयम सधे, क्योंकि या तो वे इसे शास्त्रोंमें पढ़कर जान लेती हैं या विद्वानोंके उपदेशोंमें सुन लेती हैं, और विचारती हैं कि यदि हम

प्रमाद और अज्ञानतासे हिंसादिक पंच पाप उपार्जन करेंगी तो इसका कडुआ फल हमें ही भोगना पड़ेगा। पति तो घरके काम देखने नहीं आते, जो कुछ पाप होगा हमारे सिर होगा। इसलिये वे कर्मकांडकी बड़ी ही अनुकूलता रखती हैं—चूल्हे चौकेकी शुद्धता, शरीर वस्त्रादिककी पवित्रता, रसोईकी सामग्रीकी मर्यादा तथा वर्तनादिकी स्वच्छताका ध्यान रख भोजन तैयार करती हैं; परन्तु पुरुषोंका आचार ऐसा भ्रष्ट होरहा है कि जूता पहिने, बाजारके कपड़ोंसे, दूकानपर या चौकेके बाहिर ही, अथवा हलवाईकी दूकानपर ही शुद्ध अशुद्ध मिठाई या दूसरी सामग्री बड़े प्रेमसे उदर देवकी भेंट करते हैं। फिर भी ऐसी स्त्रियां समाजमें हजार पीछे दो चार ही होंगी जो शास्त्रानुकूल भोजन बना खिला सकती हों। इसीलिये बहिनोंसे प्रार्थना है कि वे अपनी जिम्मेदारीके कामोंको भले प्रकारसे करें और अपने पतियोंको भी उनसे प्रेम करायें, क्योंकि चूल्हा चक्की और ओखली आदिके कार्योंमें प्रमाद या असावधानी करनेका पाप स्त्रियोंके सिर होता है।

यह तो सभी जानते हैं कि पुण्यका फल सुख और पापका फल दुःख है। पापोंसे इस जीवनमें ही नाना कष्ट भोगना पड़ते हैं। फिर भविष्यमें नारकी या तिर्यंच होना पड़ता है, जिनमें नाना प्रकारके असह्य कष्ट भोगना होते हैं।

शास्त्रोंका कथन है कि प्रथम तो स्त्रीकी पर्याय ही निन्द्य है जो कुत्सित कर्मोंके उदयसे प्राप्त होती है। जिसने पूर्व जन्ममें मिथ्यात्वसेवन (कुगुरु, कुदेव और कुधर्मका आराधन किया हो), अभक्ष्य भक्षण या रात्रि भोजन किया हो; अनछाना पानी पिया हो; या तीव्र

मायाचार किया हो; अथवा इन्हीं जैसे खोटे खोटे कर्म-समूह उपार्जन करनेसे स्त्री पर्याय प्राप्त होती है।

हरिवंशपुराणसे जाना जाता है कि जब नेमिनाथ भगवान अपने विवाहकालमें बारात सहित ससुराल जा रहे थे, तब एक बाड़ेमें बहुतसे पशुओंको घिरे हुए देखकर सारथीसे उनके घेरे जानेका कारण पूछा। सारथीने बताया कि बारातमें आये हुए अनेक मांसाहारी राजाओंके भोजनार्थ ही यह रोके गये हैं। सारथीका उत्तर और पशुओंका क्रन्दन सुन भगवानने अवधिज्ञानके द्वारा कृष्णका प्रपंच जाना, और तब सोचने लगे-धिक्कार है इस वेश्यासी चंचल राजलक्ष्मीको और इन रोगसे भोगोंको, जिनके कारण महान पुरुष भी निर्भय हो पापकार्योंमें दत्त-चित्त हो जाते हैं।

फिर विवाह कृत्योंको जैसेके तैसे छोड़ कङ्कण आदिको तोड़ मरोड़ गिरनार पर्वत पर जा, द्वादशानुप्रेक्षाका चिन्तवन करने लगे। जब राजुलको (राजा उग्रसेनकी पुत्री और श्रीनेमिकी अर्द्ध परिणीता पत्नीको) यह खबर मिली—जोकि अबतक नेमि जैसे सुयोग्य पतिकी प्राप्ति पर हर्षके मारे विह्वल हो रहीं थीं—बड़ी ही खेदखिन्न हुई और कहने लगीं—हाय! क्षणभरमें यह क्याका क्या होगया! भगवान! हायरे! कर्मोंके विचित्र चरित्र, बलिहारी तेरी! एक तो स्त्री पर्याय पाई, फिर यह ठीक विवाह ही के समय पतिवियोग! और सो भी थोड़े समयको नहीं, जीवन पर्यन्तको! अब क्यों न ऐसा उपाय करूं जिससे इस संसारके इन्द्रजालसे—इन मीठे मंठे विषहरे प्रलोभनोंसे छूट जाऊं, संसारके जन्ममरणसे छुटकारा पाऊं। यह विचारते ही उन्होंने

आर्यिकाके व्रत धारण किये और कालावधिपर समाधिमरण कर सोलहवें स्वर्गमें अच्युतेन्द्र हुई।

जो स्त्रियां श्रावककुल, जैन धर्म और सब प्रकारकी सामग्री पा करके भी अपना कल्याण नहीं करतीं, किन्तु नित्य सांसारिक रगड़ों झगड़ोंमें आनन्द मनाया करती हैं, वे मानों अमृत छोड़ विष पीती हैं; उनके लिये " खांड भरे भुष खात है " की कहावत चरितार्थ होती है। जिस प्रकार मूर्ख मनुष्य काग उड़ानेके लिये चिंतामणी रत्नको कङ्कण समझ फेंक देता है और फिर दुःखी होता है, ऐसे ही जो स्त्रियां कुल, धर्म आदि सारी सामग्री पाकर भी अपना हित नहीं करतीं - उसका दुरुपयोग करती हैं वे उस मूर्ख मनुष्य जैसी दुःखी होती हैं, क्योंकि उक्त सामग्रीका दुरुपयोग नर्कमें ले जानेवाला है, जहां छेदन भेदन, मारन ताड़न आदि नाना कष्ट सहना होते हैं, जिनका केवल स्मरण करनेसे ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं और छाती धड़कने लगती है।

हमारी बहिनोंको उचित है कि वे शास्त्रोंका पठन मनन करें। सुगुरु, सुदेव और सुधर्मसे अटूट प्रीति जोड़ें जिससे उनका कल्याण हो। कुगुरु, कुदेव और कुधर्मका संसर्ग तजें, क्योंकि एक तो पूर्वसंस्कारोंके कारण संसारी जीव यों ही मदोन्मत्त हो रहे हैं फिर कुगुरु आदिका संसर्ग तो उन्हें और भी दुर्दशामें कर देनेवाला है। उनके संसर्गसे हमें अपने कल्याणकी सुधि भी होनी कठिन है।

अभक्ष्य और अन्यायको छोड़ना भी उचित है। जो स्त्रियां मिथ्यात्वको त्याग देती हैं, रसोईकी सामग्री अपने हाथसे शोध,

पानी अपने आप छान यत्नपूर्वक रसोई करती हैं वे ही गृहस्थारम्भके पापोंसे बचती हैं।

जिस घरमें स्त्री पुरुष दोनों विवेकी हों वह घर मानों सुखागार-स्वर्ग है। पति देव और पत्नी देवी हैं, घर देवमंदिर और देश स्वर्गलोक है। किन्तु जहां इसके विपरीत दोनों अथवा दोनोंमेंसे कोई एक अविवेकी है वहीं नर्ककी वेदनाएं हैं; कलह और अप्रेमके कारण वही नर्कस्थान है; उसमें रहनेवाले नारकी हैं और यदि नारकी नहीं तो श्वान या बिल्ली जैसे तो जरूर हैं। यदि दम्पतिमेंसे कोई एक मूर्ख है तो दूसरेका आवश्यक कर्तव्य है कि उसे योग्य बनादे—मार्गपर लावे, उसे शिक्षा देकर या दिलाकर अपना सहयोगी या सहयोगिनी बनावे।

गृहस्थीरूपी गाड़ीके स्त्री-पुरुषरूप दोनों पहियोंका एकसा सुदृढ़ सुन्दर और पूर्णाङ्ग होना आवश्यक है। उनमें समानता होनेपर ही गाड़ी इच्छित स्थानपर ही पहुंच सकती है। यदि उनमेंसे एक भी कमजोर या अयोग्य हुआ, तो गाड़ीका निश्चित स्थानपर पहुंचना तो दूर रहा, उसका साबित रहना भी कठिन है। जो स्त्री-पुरुष पारस्परिक प्रेमसे नहीं रहते हैं वे नर्कसे भी कठिन कष्ट उठाते हैं। वे मनुष्य कभी जीवनके आनन्द नहीं उठा सकते फिर भला परमार्थ तो कर ही कैसे सकते हैं।

इस प्रकरणमें हमें यही कहना है कि हे बहिनो, तुम्हारे ही कारण जैन जाति बहुत ही नीची अवस्थामें जा पहुंची है, तुम्हीं उसे ऊपर उठा सकती हो। सीता, द्रौपदी, अञ्जना, मंदोदरी, सत्यभामा,

रुक्मणी, ब्राह्मी और सुन्दरी आदि कितनी ही स्त्रियोंके आदर्श तुम्हारे सामने हैं। स्वतः पवित्र बनो, दूसरोंको पवित्र बनाओ, अपने खान-पानका विचार रक्खो, दूसरोंसे खानपानका विचार करवाओ, अभक्ष्य, अन्याय, मिथ्यात्व आदिको अपने अपने घरोंमेंसे निकाल भगाओ क्योंकि इनसे तुम्हारा लौकिक और पारलौकिक बिगाड़ हो रहा है। कितने खेदकी बात है कि जिन बातोंसे तुम्हारा बिगाड़ हो रहा है उन्हींको तुम आनन्दपूर्वक किये जा रही हो, यदि तुम पढ़ी लिखी होतीं, शास्त्रोंका पठन मनन करती होतीं, तो जान लेतीं कि वे स्त्रियां जिनकी कि तुम सन्तान हो, कैसी गुणवती होती थीं। एक कैकेईको ही लो और देखो कि जिसने अनेक सुन्दर और श्रीमान् राजाओंके स्वयंवरमें उपस्थित रहने पर भी दरिद्रके वेशमें बैठे हुए महाराज दशरथके कण्ठमें ही वरमाल पहिनाई थी, यह उसकी पुरुष-परीक्षा और प्रवीणता नहीं थी तो और क्या था? फिर अनेक राजाओंसे युद्ध होते हुए, अपनी रथ हांकनेकी चतुराईसे महाराज दशरथको बचा लेना उसकी युद्ध-विद्या विशारदताका परिचायक नहीं था तो और काहेका था? यदि रानी मंदोदरि धर्मात्मा और विचारवान न होती तो रावणको अन्याय-कार्यसे बचनेकी शिक्षा कैसे देती? यदि सती अंजना ज्ञानवान और धर्मात्मा न होती तो ठीक ब्याहके समयमें ही २२ वर्ष तक अपने पति द्वारा तिरस्कार पाने पर भी उसीमें अनुरक्त कैसे रह सकती थी?

साढ़े चौबीससौ वर्ष बीते हैं जब कि राजा श्रेणिककी रानी चेलनाने अपने बौद्ध पति राजा श्रेणिकको जैनी बनाकर उन्हें सुमार्ग

पर लगाया था । यदि चेलना धर्मज्ञा और विद्यावान न होती तो कैसे इस कठिन कार्य्यको कर सकती थीं !

स्त्रियोंको शास्त्रमें कहे तथा किंचित् ऊपर कहे सद्गुणोंको धारणकर, विद्यावती बनकर—आर्य्याओंके मार्गपर चलकर इस लोकमें सुयश और परलोकमें शुभ गति प्राप्त करनी चाहिए ।

द्वितीय प्रकरण ।

स्त्री शिक्षा ।

जब लड़के औ लड़कियां, हो शिक्षित भरपूर ।
देश जाति औ धर्मकी, रहे न उन्नति दूर ॥

प्रकट रहे कि बालकोंके समान कन्याओंको भी बाल्यावस्थासे ही शिक्षा देना (पढ़ाना और गृहकार्य्योंका अभ्यास करना) माता पिताका परम कर्तव्य है । मातृभाषाकी शिक्षा तो देना ही चाहिए पर इसके सिवाय राष्ट्रभाषा हिन्दी व राजभाषा अंग्रेजी आदिकी शिक्षा देना भी आवश्यक है । राष्ट्रभाषा हिन्दी कितनी सरल है सो बतानेकी आवश्यक्ता नहीं । पर अधिकांश जैनग्रन्थोंका अनुवाद हिन्दीमें है इसलिए ही हमारी जैन बहिनोंको इतनी हिन्दी सीखनेकी आवश्यक्ता है, जितनीसे शास्त्रोंका पूरा पूरा अर्थ समझमें आजाए, कोई भाव छूटने न पाए । हिन्दीका साधारण अच्छा अभ्यास गुजराती और मराठी बाइयोंको ६ महीनेमें हो सकता है ।

जो स्त्रियां पढ़ी लिखी होती हैं वे अपना जीवन आनंदसे बिता सकती हैं; सन्तानको उत्तम गुणवान बनाकर देश जाति और धर्म, तीनोंका कल्याण कर सकती हैं, उसीप्रकार बालकोंके कोमल हृदय छुटपनमें मनमाने सांचेमें ढल सकते हैं, और उनके स्वभावका ढालना माताकी बुद्धिमत्ताभरी शिक्षापर अवलंबित है। बच्चोंका अधिक समय माताके पास ही बीतता है। माताके स्वभाव, माताके धर्म कर्म, माताकी बातचीत, माताकी इच्छाएं आदि बच्चेपर वह प्रभाव डालतीं हैं जो हजारों गुरुओंकी शिक्षाएं भी नहीं डाल सकतीं। पिताकी शिक्षा भी काम करती है पर बहुत थोड़ा। गुरु बेचारेको बच्चा उस समय मिलता है जब उसमें उसके भावी जीवनकी भलाइयां और बुराइयां जड़ पकड़ लेती हैं। माताकी शिक्षाएं बच्चेपरसे उसके जीवनभर अपना प्रभाव नहीं हटातीं। नैपोलियनकी माताने उसे अपनी इच्छासे ही ऐसा अदम्य वीर बनवाया था। शिवाजीकी माताने अपनी ही शिक्षासे शिवाजीको इस योग्य बनाया था कि वे एक साधारण जागीरदारसे महाराजा कहलाए। अकेले शिवाजी या नैपोलियन ही की बात नहीं है, सैकड़ों और हजारों उदाहरण ऐसे हैं, कि जिनमें माताने अपनी इच्छानुसार ही अपनी सन्ततिको बना दिया है। सारांश यह कि शूर, क्रूर, विद्वान मूर्ख जैसा भी माता चाहे अपनी सन्ततिको घड़ सकती है।

विद्याके सिवाय लड़कियोंको गृहस्थीके कामधामोंकी शिक्षा बड़ी ही जरूरी है, और यह शिक्षा माता बड़ी ही सरलतापूर्वक दे सकती हैं, तथा चतुर माताएं देती हैं। ऐसा न समझना चाहिए

कि गृहस्थीके कामधामकी शिक्षाकी क्या आवश्यक्ता है? वे तो अपने आप आते रहते हैं, यह बात नहीं है। अपने आप आते रहनेमें भी यदि किसी सुव्यवस्थित पद्धतिसे सिखलाया जाता रहे तो बड़ा ही अच्छा हो, क्योंकि अनसिखुए किसी भी कार्यको तनिकमें बिगाड़ बैठते हैं। व्यवहारिक कार्योंको सावधानीपूर्वक पापोंसे बचाते हुए करते जाना भी एक कठिन कार्य है, और इसलिये उसकी शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। जो लड़कियां छुटपनमें रसोई आदि गृहकार्य नहीं सीखतीं हैं वे सुसरालमें जाकर तिरस्कृत और दुखी होती हैं, कारण यह कि एक तो काम करनेका अभ्यास न होनेसे वह बोझसा प्रतीत होता है, आलस्य आता है। दूसरे—काम सीखा हुआ न होनेसे बिगड़ जाता है, तब तिरस्कार आदि सहना पड़ता है।

कई धनियोंकी बहू बेटियां सोचती होंगी, और सोच सकतीं हैं कि जब हमें ये काम करना ही नहीं पड़ते अथवा करना ही न पड़ेंगे तब फिर इनके सीखनेकी आवश्यकता क्या? पर उन्हें सोचना चाहिये कि लक्ष्मी चंचला है—बादलकी परछांई है, आज है कल नहीं है। दुर्भाग्य न करे उन्हें ऐसा दिन देखना पडे, पर लोगोंको ऐसे दिन देखने जरूर पडे हैं। क्या आश्चर्य कि उन्हें भी इस दुःखपूर्ण भाग्यचक्रमें पड़ना पड़े; फिर उस समय वे क्या करेंगी?

जिसने निठल्ला बैठना सीखा हो उसकी इस संकटमय अवस्थामें क्या दशा होगी? या तो भूखों मरना पड़ेगा या भीख मांगनी पड़ेगी। इसीलिये हमारा कहना है, कि खूब पढ़ो और खूब गृहस्थीके काम—धाम सीखो। हमारे कहनेका कुछ यह आशय नहीं

है कि धनिक होने पर भी तुम्हीं मजदूरके माफिक काम करती फिरो और नौकर चाकर मत रक्खो, परन्तु जैसी तुम्हारी अवस्था हो वैसा काम करो, पर काम करनेका अभ्यास हमेशा रक्खो। यदि पुण्यकर्मके उदयसे संपत्ति पाई है तो नौकर चाकरोंसे यत्नाचारपूर्वक काम लो; उनपर अच्छी देखरेख रक्खो। अपने अवकाशके समयको स्वाध्याय या लिखने पढ़नेमें लगाओ। जो स्त्री आप कुछ काम नहीं करती और न करनेकी उत्तम रीति जानती है वह नौकर चाकरोंसे भी भले-प्रकार काम नहीं ले सकती।

नौकर चाकरोंमेंसे बहुत कम ऐसे होंगे जो अपने मनसे पूरा और अच्छा काम करें। उनपर देखरेख रखनेकी बड़ी आवश्यक्ता है। जो स्त्रियां रसोईकी क्रियामें निपुण हैं वे कुटुंबियोंकी प्रकृति, देश और काल अनुसार सदा शुद्ध रसोई करती हैं, जिससे कुटुंबके लोग सदा निरोगी और सुखी रहते हैं। जो स्त्रियां पाकक्रियामें प्रवीण हैं, प्रत्येक व्यञ्जन नियमानुसार बनाना जानती हैं, वे मानों भोजन नहीं, एक पुष्टकारी औषधि खिलाकर कुटुंबका पोषण करती हैं; इसीलिये भोजनके सम्बन्धसे कवियोंने स्त्रियोंको माता तककी उपमा दे डाली है। सच है, गुण ही सर्वत्र पूजा जाता है।

माता पिताका कर्तव्य, पुत्रियोंको लिखना पढ़ना सिखाकर अथवा खाना बनाना सिखाकर ही पूर्ण नहीं हो जाता, किन्तु उन्हें शिल्प, हस्तकला आदिके सिखानेकी भी बड़ी आवश्यक्ता है। जिन स्त्रियोंको सीना पिरौना तथा कसीदा आदि काढ़ना आता है, वे

१–सूतमें पोत मूंगा आदि पिराकर जाली पंखा बनाना।

मनमाना कपड़ा तैयार करके आप पहिनतीं और अपने कुटुंबियोंको पहिनाती हैं। प्रत्येक स्त्रीको अङ्गरखा, पायजामा, कुरता, कोट, चोगा, घाँघरा, चोकी आदि कपड़ोंकी छांट, सीना व कसीदा काढ़ना, बेलबूटे बनाना, इजार बन्द गूँथना, गुलूबन्द, मोजा बनाना और गोखरू मोड़ना आदि कार्य अवश्यमेव सीख लेने चाहिये।

बचपनसे इन शिल्पकार्योंका अभ्यास हो जानेसे आगे बहुत लाभ और सुखकी प्राप्ति हो सकती है। जो स्त्रियां अज्ञानता वश शिल्पकारी[1] नहीं सीखतीं उन्हें वक्त पड़नेपर पिसाई, पानी भराई व कताई करके बड़ी कठिनाईसे अपना जीवन–निर्वाह करना पड़ता है। प्रत्येक स्त्री हस्तकलाके काम सीखकर रुपया आठ आना रोजका काम कर सकती और अपनी गृहस्थीकी गुजर आनन्दपूर्वक चला सकती है। इसलिये द्रव्य, क्षेत्र काल और भावके अनुसार सब काम सीख लेना चाहिये ताकि वक्त पड़नेपर कोई काम रुका न रहे और पराधीनता न भोगनी पड़े।

जो सुशीला और भाग्यवती कन्याएं, बाल्यावस्थामें खेल–कूद छोड़ अपने करने योग्य कामोंका अभ्यास करती हैं, उनके भविष्य-सुखमें कुछ कमी नहीं। अवकाश मिलते ही वे किसी न किसी काममें लग जाती हैं। काममें लगे रहनेके कारण उनका शरीर फुर्तीला और निरोग बना रहता है।

कन्याओंको लड़कोंकी भांति ही नहीं, किन्तु उनसे बहुत ज्यादा, अपने माता पितादि गुरुजनोंकी आज्ञा पालना चाहिये। जो

१–कारीगरी।

पुरुष लाड़ चावमें पड़कर लड़कियोंको मूर्ख रहने देते हैं, उन्हें पढ़ाते लिखाते नहीं, केवल खेलने देते हैं. वे तो जो कष्ट उठाते हैं सो उठाते हैं सो उठाते ही हैं, पर उन बाल बच्चोंके लिये मानो जन्म-भरको दुख बांध देते हैं। अर्थात् मूर्ख, ढीठ और खिलाड़ी लड़कियां, जीवनभर कभी सुखी नहीं हो सकतीं। कन्याओंको उचित है कि वे अपने माता पिता, सास ससुर, पति आदि गुरुजनोंकी आज्ञामें चलें- उनकी इच्छाके विरुद्ध कोई काम न करें और उन कामोंसे सदा दूर रहें, जिनसे उनकी तथा गुरुजनोंकी निंदा हो।

प्यारी कन्याओ! तुम कभी बुरे आचरणवाली, हठीली, झगड़ालू, आलसी और खराब प्रकृतिकी लड़कियोंके साथ हेल मेल, (खेल, बातचीत) तथा और भी किसी प्रकारका संसर्ग मत करो क्योंकि इससे बुद्धि बिगड़ जाती है। नीतिमें कहा है कि:—

संगति कीजे साधुकी, हरै औरकी व्याधि।
संगति तजिये नीचकी, आठों पहर उपाधि॥

इसीलिये नीतिमें गुणवानकी संगति करना श्रेष्ठ कहा गया है:—

जाड्यं धियो हरति सिंचति वाचि सत्यं।
मानोन्नतिं दिसति पापमपाकरोति॥
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं।
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्॥

अर्थ—जिस सत्संगतिके प्रतापसे बुद्धिकी जड़ता नष्ट हो जाती है, सत्य भाषणमें रुचि होती है, सन्मानकी वृद्धि होती है, पाप दूर

२

होकर चित प्रसन्न रहता है, और दशों दिशाओंमें सुकीर्ति फैलती है, जिस सत्संगकी महिमा कहांतक कही जाय, अतएव पुत्रियोंको चाहिये कि प्रातःकाल उठें, फिर स्नानादि क्रियाओंसे निश्चिन्त हो देवदर्शन, स्वाध्याय आदिमें संलग्न होवें, पीछे रसोई आदि करें। अवकाश मिलनेपर सुशील बहू बेटियोंमें बैठ, वार्तालापका ढंग और चतुराईके काम सीखनेमें समय बितावें। जो स्त्रियां अथवा लड़कियां कुसंगतिमें पड़ जाती हैं, उनको पीछे बहुत कड़ले फल भोगने पड़ते हैं। जहां कहीं कुसंगतिका प्रभाव पड़ा और स्त्रियां निर्लज्ज हुईं, फिर उन्हें क्या कुटुम्बियों और क्या सम्बन्धियों, सभीकी दुतकार सहनी पड़ती हैं—किसी प्रकार कुत्ते बिल्लियों जैसा कष्टमय तथा निरादर पूर्ण जीवन बिताती हैं।

प्यारी भगिनीयो! तुम अपने हानि लाभका विचार सदैव किया करो। नित्य आगे पीछेकी बातें सोचा करो। विचार करो कि तुम्हारे जीवनका उद्देश्य क्या है? कभी बुरी संगतिमें मत पड़ो, और गृहस्थीके छोटे बड़े सभी कामोंका अभ्यास करती रहो, जिससे तुम्हें कभी शोक करनेका मौका न आए।

ऊपर कही हुई बातोंके सिवाय बालिकाओंको बालकोंकी ही भांति धर्म—शिक्षण देना आवश्यक है। उन्हें बचपनसे ही मातृभाषा समझनेके साथ ही साथ पंच नमस्कारमंत्र, दर्शन, मंगल, पूजन और पद—विनती आदि अनेक पाठ तथा लौकिक नीतिकी शिक्षा देनी उचित है, जिसके अनुसार चलकर वे दोनों कुलोंकी कीर्ति फैलावें। किसी प्रकारके कुमार्गोंमें पग न बढ़ावें।

लोकोक्ति है कि 'पुत्री पराये घरका धन है' अर्थात् कन्याका पालन-पोषण तो माता पिता करते हैं, परन्तु विवाह हो जानेपर उसे कुल लक्ष्मी बनकर रहना पड़ता है। और यह ठीक भी है—सुसरालमें ऐसा बर्ताव करना चाहिये कि, जिससे माता—पिता आदि पीहरवालोंकी प्रशंसा हो।

जबतक पुत्रीका विवाह नहीं होता, माता—पिता उसके अधिकारी हैं, किन्तु भांवर पड़ते ही पति और पतिके माता-पिता, उस बहू नाम धारिणी कन्याके अधिकारी हो जाते हैं। माता पिता या भाई आदिका कर्तव्य है, कि वे किसी योग्य, सुन्दर, सर्वावयव, बलवान, विद्वान, कुलीन और समुचित वयवाले वरके ही साथ कन्याका सम्बन्ध करें। मूर्ख, वृद्ध, बाल, रोगी, व्यसनी अथवा नपुंसक आदि वरोंके साथ कन्याका सम्बन्ध कर देनेवाले व्यक्तियोंकासा अधर्मी नर-पशु दूसरा नहीं है, फिर चाहे यह विरुद्ध सम्बन्ध, पैसेकी लालचसे किया जाय अथवा किसी दूसरे कारणसे।

जो निर्दोष बच्ची तुम्हें अपना जानती हैं, तुम्हारी आज्ञाओंका पालन करती हैं; प्रत्येक कष्टमें तुमसे आश्वासन और सहायता—पूर्ण सहायता पानेकी आशा रखती हैं; तुमपर अपना सारा विश्वास रखती हैं, हाय! क्या वह भोली बच्ची तुम्हारे ही द्वारा दुःखसागरमें ढकेल दी जायगी? अयोग्य पतिके गले बांध दी जायगी? हाय हाय! यदि ऐसा हुआ तो कहना होगा कि तुममें मनुष्यत्व नहीं, तुम मनुष्य वर्गमें रहने योग्य नहीं। जाओ, जंगलमें जाओ और सिंह भालुओंके साथ रहो-मनुष्य कहलानेका तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।

थोड़े विचारकी बात है कि ऐसा आत्मा जो तुम्हारे ही जैसा सुखाभिलाषी है, तुम्हारे ही जैसा दुःखोंको देख भागता है, एक ऐसा व्यक्ति जो तुम्हें पिता, माता, भाई आदि स्वर्गीय शब्दोंसे सम्बोधित करती है; जो तुम्हारी ही प्रतिकृति है; जो तुम्हारे ही कलेजेका टुकडा है; उसे ही हे भाईयो और हे भगिनियो! हे नृशंस माता पिताओ! एक बूढ़ेके गले मढ़नेपर, तुमपर आसमान नहीं फट पड़ता? एक रोगी या नपुंसकके हाथ सौंपते समय तुमपर विजली नहीं आ गिरती? एक अयोग्य या मूर्खकी जीवन संगिनी बनानेमें तुम्हें लज्जा नहीं आती? धिक्कार है इस लोभको; धिक्कार है इन चञ्चल चांदीके टुकड़ोंको; और धिक्कार है इस पैसेसे होनेवाले सुखको। जातिके नेताओ! अपनी जीभको वशमें करो; लड्डुओंका मोह छोड़ो और इस गुड़ियोंके खेलको—इस बकरियोंकी बिक्रीको बंद करो। बहुत हुआ, ज्यादा पाप न कमाओ। कन्याएं तुम्हारे ही जैसा सैनी जीव हैं, उनको हृदय है। इन्हें सुख दुःखका ज्ञान होता है। उन्हें आह होती है! और आहमें अचूक असर होता है।

तुलसीदासजीने एक स्थानमें कहा है:—

तुलसी हाय गरीबकी, कबहूं न निष्फल जाय।
मुए चामकी आहतैं, लोह भस्म ह्वै जाय॥

खूब स्मरण रक्खो, कि किसी दूसरेको कष्टमें डालके तुम कभी सुखी नहीं हो सकते। तुम ऊपरसे सुखी चाहे भले ही दिखो, पर तुम्हारा हृदय दुःखाग्निमें निरन्तर जलता रहेगा—कभी शांत न होगा।

योग्य धार्मिक रीतिसे व्याही हुई वधू—संज्ञक—कन्या अपने

पतिकी अनुगामिनी होकर रहे। सास–ससुर, जेठ–जेठानी और देवर–देवरानी आदिसे प्रेम और नम्रतासे वर्ताव करे। आवश्यक सेवा सम्हाल भी करे। सबकी उचित लाज भी रखे जो आवश्यक है। कभी कारण होनेपर भी कलह न करे। यदि अनुचित वर्ताव भी होवे तो उसे शांतिसे सहन करे और अपनी चतुराई, नम्रता या व्यवहार-कुशलतासे उस कलहके कारणको ही मिटादे। यह थोड़ासा गृह–कलह क्या क्या खेल दिखलाता है, सो हमारे शास्त्रोंमें खूब वर्णित है। जिस घरमें लड़ाई झगड़े हुआ करते हैं, वहांसे सारी ऋद्धि सिद्धियां चल बसती हैं। तुलसीदासजीने एक स्थानमें कहा है–
'जहां सुमति तहँ संपति नाना, जहां कुमति तहँ विपति निदाना।"
इसके सैकड़ों दृष्टांत प्रत्यक्ष देखनेमें आते हैं, विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं है।

स्त्रियोंका पातिव्रत धर्म पालन करना पहिला और सर्व श्रेष्ठ कर्तव्य है। पतिव्रता स्त्रियोंकी कीर्तिसे ही आज तक भारत, नैतिक आदर्शमें सबसे आगे है। जैसे मोतीका पानी–आब–के कारण मूल्य है वैसे ही स्त्रीका पातिव्रतके धर्मरूपी पानीके कारण मूल्य है। यद्यपि सती पतिव्रताओंको अपने इस उज्वल धर्मकी, इस अनोखे रत्नकी रक्षाके निमित्त बड़े बड़े कष्ट सहना पड़े हैं; पर धन्य हैं उन देवियोंको कि जिनने सब सहा, पर अपने पातिव्रत धर्मको न छोड़ा।

सीताने अपने इसी धर्मकी रक्षाके लिए कठिन बनमें जाना स्वीकार किया, रावणके बन्दीगृहके कष्टोंको भी कुछ न समझा, और अन्तमें उसी पातिव्रत-धर्मकी परीक्षा निमित्त अग्निकुण्डमें प्रवेश किया।

पर वाहरे शीलधर्म ! तू भी क्या वस्तु है ! कि देवोंने उस अग्निको सरोवर बनाके सीतादेवीका यश, चिरकालके लिए ध्रुव कर दिया। क्या सीता जैसी सतियां, संसारमें पुनः पैदा हो सकती हैं ? क्या वर्तमान कालकी स्त्रियोंमेंसे कोई अपनी छाती पर हाथ रखके यह कह सकती है कि यदि कर्मयोगसे उसपर सीता ही जैसी विपत्ति पड़े तो वह अपने शीलधर्मपर आंच न आने देगी ?

मैनासुन्दरी जैसी परम पतिव्रता स्त्री सराहने योग्य है, जिसने अपने कोढ़ी पति श्रीपाल और उनके ७०० अंग-रक्षक योद्धाओंका अपने मनोयोग और अपनी अप्रतिम सेवा सुश्रुषासे कुष्ट रोग दूर किया था। सती अंजनाने भी २२ वर्ष तक अपने पति द्वारा घोर तिरस्कार और कष्ट पाया, पर अपना स्नेह और धर्म जहांका तहां अटल रक्खा। अन्तमें अपनी इस कठिन तपस्याका फल पतिप्रेम रूपमें पाया था।

कुलवती नामक एक सतीने पतिकी आज्ञासे अपना सारा जेवर पिताके यहां रख दिया और अनेक कष्टदायक सुदूर विदेशमें अपने पतिके साथ चली गई। आज तो कुछ विचित्र ही अवस्था है। स्त्रियां सब कुछ छोड़ सकती हैं पर जेवर नहीं छोड़ सकतीं। अनेक स्त्रियां तो अपने पतियोंको गहनोंके हेतु ऐसा तंग करती हैं कि जिसकी सीमा नहीं। फिर यह भी आशा नहीं कि वे किसी भारी कठिनाई पड़ने पर उस जेवरका कोई सदुपयोग करने देंगी। पति कैसी ही आपत्तिमें क्यों न फंसा हो ? उसका प्राण ही क्यों न जाता हो—परन्तु श्रीमतीजी अपना गहना न देंगी। उनकी इस मूर्खतासे हम क्या कहें ?

जो स्त्रियां पतिकी अपेक्षा जेवरसे अधिक प्रेम करती हैं उन्हें

हरिश्चंद्रकी रानी शैव्या (तारा) के जीवनचरित्रसे शिक्षा लेनी चाहिये, जिसने अपने पतिका सत्यव्रत रखनेको राज्य छोड़ा और पराई चाकरी की। फिर गहनोंकी तो पूछ ही क्या थी? पतिव्रता रानी चेलनाके समान कितनी स्त्रियां बुद्धिमती होंगी कि जिसने अपने बौद्ध पति राजा श्रेणिकको जैनी बनाया और उन्हें आत्मकल्याणके सन्मुख किया।

शीलव्रतके प्रभावसे सुखानन्दकुमारकी स्त्री मनोरमाकी देवोंने रक्षा की। इसी प्रकारकी अनेकों पतिव्रताओंके चरित्र शास्त्रोंमें लिखे हैं। सच है कि स्त्रियोंके सब धर्मोंमें-सब व्रतोंमें, सब कर्तव्योंमें-पातिव्रत सर्वश्रेष्ठ है।

पतिके सिवाय अन्य पुरुषोंको, उनकी अवस्थानुसार पिता, भाई और पुत्र सदृश समझकर यथायोग्य वर्ताव करना चाहिये। पातिव्रत धर्मकी महिमा शास्त्रोंमें इस प्रकार वर्णन की गई है—

श्लोकः—तोयत्यग्निरपि स्रजत्यहिरपि व्याघ्रोपि सारङ्गति।
व्यालोऽप्यश्वति पर्वतोऽप्युपलति क्ष्वेडोपि पीयूषति॥
विघ्नोऽप्युत्सवति प्रियत्यरिरपि क्रीडातडागत्यपाम्।
नाथोऽपि स्वगृहत्यटव्यपि नृणां शीलप्रभावाद् ध्रुवम्॥

अर्थ—शीलके प्रभावसे अग्नि जलके समान, सांप मालाके समान, सिंह मृगके समान, कुटिल हाथी पालत घोड़ेके समान, विष अमृतके समान, विघ्न उत्सवके समान, शत्रु मित्रके समान, समुद्र छोटे कुण्डके समान और भयंकर बन घरके बगीचेके समान हो जाता है।

शीलकी प्रशंसा कहांतक की जाय! जो स्त्रियां बाल्यकालसे

ही शीलधर्मकी रक्षा करती हैं उनके घर कभी कोई दुख आदि नहीं होता; न कोई भूत प्रेतादिक व्यन्तरोंकी बाधा होती हैं। पतिव्रताओंकी सन्तान रूपवान, बलवान, धार्मिक और आज्ञाकारिणी होती हैं। धर्मके और सब अंग बिना शीलके व्यर्थ हैं। कुसंगतिमें रहनेवाली मूर्ख स्त्रियां धर्मकी महिमा न समझ, अपनी इज्जतमें बट्टा लगाती हैं; वे व्यभिचारिणियां मुख देखने योग्य भी नहीं हैं। जो स्त्रियां ऐसी स्त्रियांसे किसी प्रकार सम्बन्ध रखती हैं उनका चित्त मलीन और कलुषित हो जाता है। व्यभिचारीके जप, तप, तीर्थ, व्रत, पूजा और दानादि सब निष्फल हो जाते हैं, ऐसा विचारकर व्यभिचारको दूरसे ही छोड़ो और शील-व्रतको तन मनसे निरतिचार पालो, जिससे तुम सांसारिक सुखोंके अतिरिक्त मोक्षसुखकी अधिकारिणी होओ।

शीलगुणके साथ हीसाथ स्त्रियोंको शांतस्वभाव और विनयी होना आवश्यक है। बुद्धिमती स्त्री वही है जो अपने सुस्वभावके कारण सारे कुटुम्बको प्रिय होती है, सबसे प्रिय वचन बोलती तथा सबका आदर करती है; किसीके कटु वचन सुननेपर भी क्रोध नहीं करती और सदा काल हंसमुख रहती है जिससे उसकी ही नहीं किन्तु उसके माता पिताकी भी प्रशंसा होती है। कोई कोई कर्कशाएं अपने कुटुंबसे तथा पतिसे सदा नाराज रहती है, कभी भी प्रेमसे नहीं बोलती। यदि बोलें भी तो शेरनीकी तरह खानेको दौड़ती हैं; परन्तु अन्य जनोंसे बड़े प्रेमसे बोलती हैं, ये लक्षण कुलटा स्त्रियोंके हैं। कोई २ स्त्रियां तो ऐसी जड़बुद्धि होती हैं, कि घरकी देवरानी, जेठानी, सास और ननंद आदिसे बैर बांधती बोलती तक नहीं, पर दूसरी अयोग्य

स्त्रियोंसे बड़ा ही सम्बन्ध रखती हैं, ऐसी स्त्रियोंकी गृहस्थी शीघ्र बरबाद हो जाती है और वे जन्म भर दुःख भोगती हैं। उन्हें चाहिये कि ससुरको पिताके और सासको माताके समान समझें तथा अन्य कुटुंबी जनोंको यथोचित आदर, स्नेह और विनयकी दृष्टिसे देखें, सबसे प्यारसे बोलें और उनकी उचित आज्ञाओंको भूलकर भी न टालें।

स्त्रियोंको विचारनेकी बात है कि हमारे पतिके बचपनसे ही सास ससुर यह बात विचार कर खुश होते हैं कि बहू आकर घरका सब काम सम्हालेगी और हमारी सेवा करेगी। इसी हेतु उन्होंने तन, मन और धन सम्बन्धी नाना कष्ट भोगकर भी तुम्हारे पतिकी सेवा की है। उन्हें यही आशा थी कि ये हमारे बुढ़ापेमें काम आवेंगे। अब उनकी गिरती अवस्थामें उनकी सेवा करनेका—उनकी की हुई सेवाका प्रतिफल देनेको अपने कर्तव्यका पालनेका अवसर आया है। तुम्हारा सौभाग्य है कि सास ससुर आदि गुरुजनोंके कारण तुम्हारी गृहस्थी सुशोभित होरही है। सदा हर्षपूर्वक उनकी सेवा करो, जिससे उनका मन किंचित् भी दुःखी न होने पावे। तुमको इतना तो विचारना चाहिये कि तुम्हारे सास ससुर अपने लड़केको अर्थात् तुम्हारे पतिको पालनपोषण करके हृष्टपुष्ट और पढ़ा लिखा करके गुणवान न करते तो आज तुम अपने पतिका ऐसा सुख कहांसे भोगतीं? ऐसे ही अनेक कारण हैं; जिनसे सास ससुरका तुम्हारे ऊपर बड़ा उपकार है। जो स्त्रियां ऐसे परमोपकारको भूल जाती हैं, और उनकी सेवा टहल नहीं करतीं वे दुष्टाएँ, कृतघ्न और निन्दनीय हैं।

जो स्त्रियां अपने दुष्ट स्वभावके कारण गुरुजनोंकी सेवा नहीं

करतीं, वृद्धावस्थामें उनका निरादर करतीं, कठोर वचन कहतीं, गालियां देतीं, दुतकारतीं, अति परिश्रमका काम लेतीं, पेटभर खानेको नहीं देतीं और जो देतीं भी तो रूखा सूखा और बुराभला अथवा रुपये-पैसे, कपड़े-लत्ते आदिसे तंग करती हैं, वे मूर्खाएं वृद्ध होनेपर, अपनी बहूबेटियों द्वारा ठीक इसी तरह दुखित और तिरस्कृत होती हैं। संभवतः निस्सन्तान होतीं, और एक न एक आधिव्याधिके पाले पडी ही रहतीं हैं। अतएव प्रत्येक बहूबेटीको ऐसा वर्ताव करना चाहिये, जिससे कुटुम्बकी सुख सम्पत्ति बढ़े। घरमें जैसी कुछ रूढ़ि चल जाती है फिर घरके छोटे बड़े सब उसीके अनुसार चलने लगते हैं।

इस विषयमें एक छोटीसी कथा इस प्रकार है, कि कंचनपुर नामक नगरमें एक कुटुम्ब रहता था। जिसमें सेठ धनपाल, सुभद्रा सेठानी, वसुपाल पुत्र और अविनीता नामक पुत्रवधू थी। एक समय सेठ धनपालने, अपनी अति वृद्धावस्था जानकर, घरका सब कारोबार अपने पुत्र वसुपालको सौंप दिया; और आप शेष आयु निराकुलतासे धर्मध्यानपूर्वक व्यतीत करनेको उद्यत हुए। थोड़े दिन व्यतीत होते ही पुत्रवधू अविनीता अपने पतिको सर्वस्वका स्वामी समझ अभिमानमें आ गई और मूर्खतासे सास ससुरका तिरस्कार करने लगी। उन्हें रसोईमेंका बचा रूखा सुखा भोजन देने लगी सो भी मिट्टीके ठीकरोंमें और तनिकसा। इतनेसे भोजनमें उनका पेट भरेगा कि भूखे रहेंगे, इसकी उसे चिन्ता नहीं थी। उनके पहिनने, ओढ़ने और बिछानेको भी फटे पुराने कपड़े दें, नाना प्रकारके तिरस्कारपूर्ण वचन कहे, इस प्रकार बेचारे सेठ सेठानी अति दुःखित हो गए। वसुपाल भी

माता पिताकी कभी सुधि न लेता क्योंकि वह पक्का स्त्री-भक्त था।

देखो तो संसारका स्वार्थ, कि जिन माता पिताने जन्म दिया, बचपनसे पालापोषा और पढ़ा लिखाकर योग्य बनाया, उन्हींके लिए यह व्यवहार, उन्हींकी यह दशा, खेद! कितने ही पूज्य पुरुषोंकी इसी प्रकार पत्नी-सेवक कुपूतों द्वारा अवगणना होचुकी है, होरही है और होगी। सेठ बेचारेने तो शांतिमय जीवन बिताना चाहा था, पर यह सारे संसारकी अशान्ति मानो उसपर टूट आई। भाग्यसे वसुपालको पुत्र-प्राप्ति हुई। पुत्रका नाम रक्खा गया गुणपाल। गुणपाल जब बड़ा हुआ तो श्रीनगरके सेठ जिनदासकी पुत्री विनयसुन्दरीके साथ विवाहा गया। सेठ जिनदास बड़े धर्मज्ञ और अनेक शास्त्रोंके मर्मज्ञ थे। उन्होंने अपनी पुत्री विनयसुन्दरीको लौकिक और धार्मिक दोनों प्रकारकी शिक्षाएं भलीभांति दिलाईं थीं, जिससे उसके गुण अन्य पुत्र पुत्रियोंके लिये उपमा देने योग्य हो गए थे। जब यह विनयसुन्दरी, पतिके घर आई, तो अपनी सास अविनीताका चरित्र देख दंग होगई, परन्तु करे क्या, प्रथम तो सासूकी विनयका ध्यान, दूसरे नवागता होनेके कारण प्रत्येक बातके कहनेमें संकोच।

परन्तु उसे अपने अजिया ससुर (पतिके दादा) और अजिया सास (पतिकी दादी) का दुःख देखकर चैन न पड़ा। वह और सभी बातोंसे चित्त हटाकर सदैव इस बातके विचारमें दत्तचित्त रहने लगी, कि किस उपायसे इनका दुःख दूर करूँ। पढ़ी लिखी और विद्वान तो वह थी ही, एक युक्ति उसने निकाल ही ली अर्थात् वे ठीकरे जो उन वृद्ध दुखियोंके भोजन कर लेनेपर फेंक दिए जाते थे, जोड़ २

कर घरके एक कोनेमें रखने लगी । एक दिवस अविनीताने उन घड़ोंके टुकड़ोंको इकट्टा देख विनयसुन्दरीसे पूछा—ये तूने क्यों इकट्ठे किये हैं ? उसने विनयपूर्वक उत्तर दिया कि सासुजी ! अपने कुलकी रीति तो करनी ही पड़ेगी; उसकी यह तैयारी है। आप और ससुरजी भी कभी बूढ़े होंगे तब रूखा सूखा भोजन परोसनेके लिये इन ठीकरोंकी जरूरत पड़ेगी । इसीलिए इन्हें एकत्र कर रही हूं सुनकर अविनीताकी आंखें खुल गई । उसने उसी घड़ीसे सास ससुरके खान पान और पहिनने ओढ़नेका उत्तम प्रबन्धकर दिया, और अपने पतिको भी उनकी सेवा करनेके लिए उत्साहित किया । फिर तो सेठ सेठानी धर्ममें तत्पर हुए । ये सब करतूतें विनयसुंदरीके सद्गुणोंकी थीं, जिनके कारण कुटुम्बमें उत्पन्न हुआ एक महाकुलक्षण शांत हो गया । सेठ सेठानीने सन्तुष्ट होकर विनयसुन्दरीको लौकिक पारलौकिक सुखोंकी प्राप्तिके लिए आशीर्वाद दिया ।

स्त्रीको अपने पतिकी आज्ञाकारिणी और उसके सुख दुखकी साथिन होना योग्य है, क्योंकि पतिके सुखी रहनेसे ही स्त्रीका जीवन सफल है । जिस प्रकार प्राणियोंके शरीरका मूलभूत जीव है, उसी प्रकार स्त्रीका मूलभूत पति है । पतिके बिना स्त्रीका जीवन वृथा है । इस हेतु पतिको सदैव प्रसन्न रखना स्त्रीका कर्तव्य है । स्त्रीको कभी भी पतिकी आज्ञा भंग नहीं करनी चाहिये । सदैव उसके योग्य–सत्कार और विनयका ध्यान रखना चाहिये । कभी भी पतिसे कड़े स्वरमें नहीं बोलना चाहिये । पतिके आसनसे ऊंचे आसन पर भी कभी न बैठना चाहिये । पतिके नाराज होनेपर स्त्रीको शांति

धारण करनी चाहिये, क्योंकि स्त्रीके शांत न रहनेपर कलह बहुत बढ़ जाती है। जब पतिका क्रोध ठंडा पड़ जाय तब नम्रतापूर्वक ठीक ठीक बात समझावे। यदि अपना अपराध निकले तो पतिसे क्षमा मांगे। जब पति दो चार मनुष्योंके पास बैठकर वातचीत करता हो, तो किसी वस्तुके लानेकी बात न कहे न कहलावे। यदि किसी वस्तुकी आवश्यक्ता हो तो उचित समयमें अच्छे ढंगसे कहे और प्रत्येक व्यवहार ऐसी नम्रता और सुशीलतासे करे कि पतिका चित्त प्रसन्न और संतुष्ट रहे। यदि घरमें सुयोग्य गृहिणी हो तो पति बाहिरसे कैसा ही खेदखिन्न आवे, घरमें आते ही प्रसन्न हो जायगा।

कोई २ मूर्ख स्त्रियां पतिके भोजन करते समय अपने गहनोंका प्रस्ताव छेड़ती हैं, कोई किसी वस्त्र बनवानेके लिये कहती हैं, अथवा देवरानी—जेठानीकी, घी तेल, और अनाजकी तथा न जाने कहां कहांकी जिक्र छेडती हैं कि जिससे पति भरपेट खा भी नहीं सक्ता। या तो उस समय बिलकुल मौन रहना चाहिये अथवा कोई धर्मिक या व्यावहारिक कथा छेडनी चाहिये। पर खूब स्मरण रहे कि उस कथामें शोक, दुःख, चिन्ता, घृणा आदि बिलकुल न हो; किंतु प्रेम, धर्म, नीति और किंचित् हास्य आदिकी मात्रा हो।

सारांश यह कि भोजन करते कराते समय पति पत्नी खूब प्रसन्न रहें। जो स्त्री अपने पतिके सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी होती है—उसे प्राणाधिक समझ सेवामें तत्पर रहती है वही कुल-लक्ष्मी है। वही सती पतिव्रता है। यदि पतिको व्यापारमें हानि हुई हो या कोई दैवी आपत्ति आई हो, तो स्त्री अपने वस्त्राभूषणोंका मोह छोड

दे और यदि उनसे पतिकी कीर्ति रहती हो तो रक्खे—इज्जत बचावे। अपने घरकी बात भूलकर भी बाहिर न कहे। घरमेंसे न देने योग्य ऐसी कोई चीज किसीको न दे अथवा न बेचे, जिसपर पति आदि कुटुंबियोंके रुष्ट होनेकी संभावना हो।

सदा अपने गृहस्थी सम्बन्धी हानि-लाभका विचार रखे, क्योंकि पति कैसा ही कमाऊ क्यों न हो, यदि स्त्रियां घरको सम्हालके न चलावें तो बढती नहीं हो सकती। प्रत्येक स्त्रीका कर्तव्य है कि खर्च बडी ही सावधानी और चतुराईसे करे; सदैव समुचित बचत करती रहे। यदि दुर्भाग्यसे किसी स्त्रीको व्यसनी, आलसी, और अधर्मी आदि पति मिले तो उसे येन केन प्रकारेण सुमार्गपर लावे; परलोक व धर्ममें रुचि उत्पन्न करनेका उपाय करे। किसीको धर्ममार्गपर लगा देना बडे ही पुण्यका कार्य है, और फिर धर्ममार्गपर लगानेवालोंमें भी इतनी योग्यता होनी चाहिये। गरज यह कि स्त्रियोंको बचपनसे ही ज्ञान सम्पादन कर रखना चाहिये ताकि समय समयपर उसकी सहायतासे कठिनाइयोंपर विजय पाती रहें।

स्त्रियोंको साधारण—जितनी कि उन्हें आवश्यक है—वैद्यक विद्या सीखनेकी भी बड़ी आवश्यक्ता है। यदि इस विषयकी शिक्षा स्त्रियोंने नहीं पाई है तो अपने कर्तव्योंमेंसे एक सबसे बड़ा कर्तव्य पालन सच्ची माता होना, बालबच्चोंकी रोग चर्या और औषधि आदि करना नहीं कर सकतीं और अपना भी रोगोंसे बचाव नहीं कर सकतीं। इसलिए इस स्थानपर कुछ ध्यान देने योग्य बात लिखी जाती है—

(१) गर्मी—शरीरमें अधिक तापके लगनेसे हृदय सूख जाता

है, जिससे मूर्खता और दुर्बलता आदि नाना रोग उत्पन्न होजाते हैं। इसलिये बाल बच्चोंका और अपना भी गर्मीसे बचाव करना चाहिये।

(२) सरदी–ज्वर, वात, शरीरमें दर्द, पेटमें पीड़ा इत्यादि रोग सर्दीके दोषसे होते हैं। उष्ण–देशके रहनेवालोंको बहुधा अधिक सरदी हो जाया करती है। इसका कारण यह है कि वे गर्मीसे व्याकुल हो असमयमें ही शरीरको ठंड लगा देते हैं। अधिक परिश्रम करके आनेपर शीघ्र ही कपड़े उतार डालना, अथवा जल पी लेना, ओस पड़नेकी जगह सोना, सोते समय अधिक ठंड लगने देना, वर्षा-कालमें शरीरको हवा लगने देना, ठंडमें कपड़ोंको कम पहिनना, शीत ऋतुमें ठंडे जलमें बहुत देर तक नहाते रहना आदि बातोंसे सरदी हो जाया करती है। कभी कभी इस सरदीसे ही प्राणघातक रोग हो जाते हैं अतएव इससे बचनेका सदा ध्यान रखना चाहिए।

(३) पीनेका जल–जीवन धारण करनेके लिये जल एक मुख्य पदार्थ है। बहती हुई नदी और अधिकतर गहरे कुओंका पानी साफ होता है। जलको सदा छानकर पीना चाहिये, जिससे कूड़ा-कचरा और जीव-जन्तु आदि पीनेमें न आवें। जलके पात्रोंको सदा ढंके रक्खो। पाखानेसे आकर कभी पानी मत पियो। भोजन करते समय भी अपनी तासीरके अनुसार पानी पीना चाहिये, जिससे कि पाचनक्रिया अच्छी हो। निराहार पानी पीने, खड़े खड़े पानी पीने, धूपमेंसे आकर एकदम पानी पी लेने आदिसे तिल्ली (प्लीहा) बढ़ जानेका डर रहता है और दूसरे संघातक रोग भी हो जानेका भय रहता है। इसलिए पानीकी अशुद्धता और दुरुपयोगसे बचना चाहिए।

(४) भोजन—यह मनुष्यके जीवनका आधार है। अतः इस पर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है। भोजनका स्थान साफ हो, छतमें कीड़े मकोड़ोंसे बचावके लिए एक कपड़ा बंधा हो, प्रकाश और वायुके लिए पूरा पूरा प्रबंध हो। सामग्री ऋतुके अनुसार और ताजी हो। भोजन करनेके पीछे ही नहा लेना मंदाग्निका रोग उत्पन्न करता है। भोजन करते ही काममें लग जाना भी कुछ हानिकारक है। भोजनके पीछे किंचित् विश्राम लेना—दांयें—बांयें करवटसे लेटना चाहिए, परन्तु यह विश्राम पन्द्रह बीस मिनिटसे अधिक न हो अथवा नींदके रूपमें भी न हो। फिर परिश्रममें लगाना चाहिए। कच्चा और बासी भोजन करनेसे पाचनशक्ति घटती और उदररोग पैदा होते हैं, बुद्धि भी न्यून होती है। भोजन उतना ही बनाना चाहिए, जितना आवश्यक हो और बासी न बचे।

(५) वायु—प्रत्येक मकानमें वायु और प्रकाशका पूरा प्रबंध हो। पाखाना, सोने और खानेके घरसे दूर हो तथा उसके झाड़ने आदिका पूरा प्रबन्ध हो। गोशाला भी हमारे सोनेके घरसे जुदी हो। सोनेके घरमें ज्यादा और व्यर्थका सामान नहीं रहना चाहिये। घरके आसपास कोई ऐसी मैली नाली या गली-कूचा न होना चाहिये जो मैला रहता हो। मकान प्रतिदिन पूरा पूरा झाड़ाफूका जाना चाहिए। खिड़कियोंका भी यथोचित् प्रबन्ध हो।

(६) निद्रा—दिनभरके परिश्रमकी थकावटको दूर करनेके लिये विश्राम लेना आवश्यक है और यह बात निद्रासे भलीभांति पूर्ण हो जाती है। यथोचित् निद्रा आनेसे बहुतसे रोग नहीं होने पाते।

रातमें बहुत जागने या भलीभांति निद्रा न लेनेसे शरीर अकड़ने लगता है, देह टूटती और आलस्य आता है, तथा काम करनेमें भी जी नहीं लगता; अतः योग्य रीतिसे निद्रा लेना जरूरी है। सीले स्थानमें अथवा बिना कुछ ओढ़े सोना हानिकारक है। पौ फटनेके पहिले ही शय्या त्याग देना आरोग्यप्रद है।

(७) व्यायाम याने कसरत—अंगप्रत्यङ्गोंको चलाये बिना शरीरमें फुर्ती नहीं आती। बच्चोंको भी भलेप्रकार कुदकने और खेलने देना चाहिए; यही उनका व्यायाम है। दिनरात उन्हें गोदीमें लिए रहना जान बूझकर बीमार बनाना है। स्त्रियोंको पुरुषोंकी नाईं दण्ड पेलना और बैठकें लगाना आवश्यक नहीं है, किंतु घरका झाड़ना, बुहारना, पानी भरना, कपड़े छांटना (धोना), पीसना आदि ही उनका व्यायाम है। जो स्त्रियां घरके इन कामोंके करनेसे वंचित रहती हैं वे ही प्रायः अधिक रोगी हुआ करती हैं और थोड़े समय जीती हैं। काम धाम करनेवाली स्त्रियां नीरोग रहती हैं, इसलिये उन्हें इस जीवनमें सुख मिलता है; परलोकको भी नीरोग रहनेके कारण वे सुखकी कमाई कर सकती हैं।

कुछ साधारण और शीघ्र हो जानेवाले रोग और उनकी औषधियां भी जान लेना स्त्रियोंको जरूरी है। बचपनमें बच्चोंको दांत, ज्वर और खांसी आदि हो जाया करती है तथा यदि उपाय न किया तो एक बड़े रोगमें बदल जाती हैं। मूर्ख माताएं भूत प्रेत या नजर आदिके भ्रममें पड़, कभी २ अपने बच्चोंसे हाथ धो बैठती हैं। कुछ रोगोंकी पहिचान और उनकी औषधियां नीचे लिखी जाती हैं—

सांसकी पहिचान—जब सांस लेते समय बालककी नाकसे सुर जल्दी जल्दी चलकर फैलता हो तो जान लो कि इसकी छातीमें दर्द है। छातीमें दर्द होनेसे आंखें पथराने लगती हैं, सांस लेनेमें पीड़ा होती और पेट फूल जाता है। होंठ पीले पड़ जाते तथा मुंह लाल और सफेद पड़ जाता है। ऐसी अवस्थामें घबराना नहीं चाहिये, किंतु योग्य वैद्य, डाक्टर या हकीमसे इलाज कराना चाहिये।

आंखोंकी पहिचान—जब शरीरकी हालत अच्छी होती है तो आंखें साफ रहती हैं। जब त्योरी बदले या आंख मैली रहे तो जानना चाहिए कि बच्चेके सिरमें बीमारी होनेवाली है।

नींदका न आना—जब बालकको ठीक ठीक नींद न आवे, तब जानना चाहिए कि उसका स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ है। इसी प्रकार जब बालक मामूलीसे ज्यादह रोवे; तो जानना चाहिए कि बालक बीमार पड़नेवाला है।

खाँसी—बालकको जब सरदी होती है तब वह बारबार खाँसता है और उसकी आवाज बैठ जाती है। खांसनेसे कभी कभी पसली भी चल निकलती है।

माता या चेचक—बच्चोंको चेचक निकलनेके पहिले टीका लगवाना याने गुदवाना आवश्यक है।

जो लोग लाड़—प्यार या मूर्खतासे टीका नहीं लगवाते वे पीछे पछताते हैं। माता निकलनेके दो तीन दिन पहिलेसे ज्वर आता है, दिलपर घबराहट और बेहोशी होती है, तीसरे दिन बदन लाल पड़ जाता और माथेपर खसखस जैसे छोटे छोटे दाने (फुन्सियां) दिखाई

देते हैं। यह दशा उस चेचककी है जो टीका लगानेके भी पीछे कभी कभी निकलती है। यदि टीका न लगा हो तो चेचक बड़े जोरसे निकलती है। मूर्ख स्त्रियां इसका मूल कारण तो जानती नहीं; समझती हैं कि यह शीतला देवीका कोप है, और इसलिए शीतला देवीकी पूजा–अर्चा किया करती हैं, जिससे कोई लाभ नहीं होता। माताकी बीमारी, बच्चोंमें माताके पेटकी गर्मीसे होती है। माताके पेटकी गर्मी ही कारण पाकर इस विकारके रूपमें निकलती है; इसीलिये इसका नाम 'माताकी बीमारी' पड़ा है। तर और शीतल भोजनादि देनेसे शीघ्र और सरलतापूर्वक यह विकार निकल जाता है–शान्त हो जाता है। बुद्धिमान स्त्रियां देवियोंके मठोंमें नहीं दौड़ी फिरतीं; किन्तु समझ बूझकर इलाज करती हैं और रोग शीघ्र ही आराम कर लेती हैं।

यदि बालककी डूंठी (टुंडी नाभी) पक जाय तो दीवेका (दीपकका) तेल लगावे या हल्दी, लोध (पंसारियोंके यहां मिलनेवाली एक औषधि) और नीमके फूल, बारीक पीसकर लेप करें। यदि बालक दूध न पीता हो, तो पहिले यह जानना आवश्यक है कि किस पीड़ासे दूध पीना बंद हुआ है? जिस अङ्ग पर बालक बार बार हाथ फेरता हो, उसी स्थान पर दर्द समझकर शीघ्र ही उसका योग्य इलाज करना चाहिये। यदि हंसली चढ़ गई हो तो दाईको बुलाकर मलवा देनेसे आराम हो जाता है। यदि कागला बढ़ गया हो तो चूल्हेकी राख और काली मिरच पीसकर अंगुली पर लगा, चतुराईके साथ उसे दबा देवें।

कभी २ बालककी आंखें गर्मी, सर्दी या दांत निकलनेके सबब

दुखने लगती हैं; तब रसोत (पंसारियोंके यहां मिलनेवाली एक औषधि) पानीमें घिसकर आंखपर लेप करे। आंखके भीतर भी एक बूंद डाले। संभवतः तो इसी दवाईसे बालककी आंखें अच्छी हो जांयगीं। अथवा पीली मिट्टीकी टिकियां बनाकर घड़े पर रखदे, और रातको सोते समय आंख पर बांधदे। इस रीतिसे आंखोंका दुखना शीघ्र आराम हो जाता है।

यदि बालकको खांसी होजाय तो सोते वक्त उसके मुंहमें अनारका छिलका दबा दे, अथवा भूभलमें सिके हुए—भुने हुए—बहेड़ेके छिलकेका चूर्ण बालकको चटावे। यदि बालकको पेशाबके साथ खून आता हो तो पाषाण भेद और साटा पानीमें पीसकर पिलावे। यदि दस्तमें आंव आती हो तो वायविडंग, पीपल, अजमोद, कुडकुडेके बीज और सफेद जीरा पानीमें पीस मिश्री मिलाकर पीनेको दे। यदि आंव खूनके साथ आती हो तो कच्ची पक्की सौंफ पीसे और उसमें कच्ची खांड मिलाकर चूर्णकी भांति खानेको दे अथवा सोंठका मुरब्बा खिलावे। यदि बालकको ज्वर आता हो तो ऐसी दवा देनी चाहिये, जिससे कुछ दस्त होकर पेटका विकार निकल जावे।

दांतोंको सहज रीतिसे निकालनेका यह उपाय है कि धावड़ेके फूल और पीपलको आंवलेके रसमें मिलाकर बच्चेके मसूड़ों पर मले। यदि पेशाब बन्द हो गई हो तो टेसूके (पलाश—छेवला) फूलोंको बालकके पेडू पर लेप करदे। जहां तक हो सके बालकोंको जल्दी पचनेवाला ताजा भोजन देना चाहिये, जिससे वे निरोग रहें। यदि कोई रोग भी हो जाय तो धीरतापूर्वक आप ही या किसी अच्छे वैद्य

द्वारा दवाई करे, क्योंकि मूर्खता वश अधीर होने और धूर्त ढोंगियोंके मंत्र जंत्रोंमें पढ़नेसे हानिके सिवा कुछ भी लाभ नहीं है। इसलिये प्रत्येक बातकी वास्तविकता जाननेके लिये सदैव अच्छी पुस्तकें पढ़ती रहनी चाहिये। इससे सांसारिक सुखोंके सिवाय पारमार्थिक सुखोंकी प्राप्ति होती है।

यहां प्रसंगवश यह बात भी कह देना योग्य है कि कोई स्त्रियां विना आगा पीछा सोचे ही दो-दो चार-चार वर्षकी अवधि तक व्रत आदि करनेकी प्रतिज्ञा कर लेती हैं। ऐसी ही अवस्थामें यदि गर्भ रह जाता है तो गर्भको इन व्रत उपवासोंसे बड़ा ही कष्ट होता है। बेचारी बड़े धर्म-संकटमें पड़ जाती हैं-प्रतिज्ञा भी तोड़ नहीं सकतीं और गर्भका कष्ट भी देख नहीं सकतीं। उत्साहके वशवर्ती हो हमें कोई प्रतिज्ञा नहीं करनी चाहिये। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, संहनन व शक्ति देखकर ही कोई प्रतिज्ञा करो। कुछ मेरा यह कहना नहीं है कि व्रत उपवास करो ही मत। नहीं, करो; पर भले प्रकार आगा पीछा सोचकर।

तृतीय प्रकरण।

स्त्रियोंकी नित्यचर्य्या।

दोहा—गृहि श्राविकाकी क्रिया, चाहिये यथाचार।
ताको वर्णन करत कछु, निरखि श्रावकाचार॥
जल छानन, तजि निशि-असन, श्रावक चिह्न जु तीन।
प्रति दिन दर्शन जो करे, सो जैनी परवीन॥

स्त्रियोंको उचित है कि सूर्योदयके पूर्व शय्यासे उठ, पंच परमेष्ठीका स्मरण करें। बिस्तरोंको सम्भाल यथास्थान रख मलमूत्र आदि बाधाओंसे निश्चित होवें। अनेक आलसी स्त्रियां दिन चढ़े उठतीं, और बिस्तरोंको ज्योंके त्यों छोड़कर और और काम धंधोंमें लग जाती हैं, यह बड़ी अज्ञानता है। स्त्रियोंको पतिसे पीछे सोना और उससे पहिले उठना चाहिये।

गांवके बाहर दीर्घबाधाको जाना आरोग्यप्रद और अहिंसाका कार्य है। दीर्घशंकाको कपड़े बदलकर जाना चाहिये, क्योंकि अपवित्र हाथों व अपवित्र स्थानके स्पर्श हो जानेका भय रहता है। शौचादिकका पानी छना हुआ होना चाहिये। जो बर्तन शौच करनेका हो उसे अन्य कामोंके प्रयोगमें न लावें। शौचके लिये जितना पानी आवश्यक हो उतना ही लेना चाहिये। बहुतसे लोग जलकाय जीवोंकी हिंसाके ख्यालसे पानी थोड़ा लेते हैं जिससे अपवित्रता ज्योंकी त्यों बनी रहती है। ध्यान रखनेकी बात है कि गृहस्थके लिए स्थावर कायकी हिंसाका सर्वथा त्याग करना अशक्य है, परन्तु इसका मतलब कुछ यह नहीं है कि व्यर्थ ही स्थावरकायिक जीवोंकी हिंसा की जाय। शौचके अंतमें अधोस्थानको जलके सिवाय प्राशुक और शुद्ध मिट्टी अथवा भस्मसे धोकर शुद्ध करना भी अच्छा है। इसी प्रकार लघुशंकाके पीछे इन्द्री व हाथ पांव धोना आवश्यक है।

शौच–क्रियासे निपट कर घरको कोमल बुहारीसे बुहारना चाहिए। जितने भी जीव बुहारने पर निकलें, एक सुरक्षित स्थानमें रख दिए जावें। खजूरकी कांटेदार बुहारी छोटे छोटे जीवोंका बहुत

ही संहार करती है। या तो उससे बुहारा ही न जावे, और जो बुहारा भी जावे, तो उसकी एक एक पत्तीको फाड़कर चार चार छः छः भाग कर दिए जावें जिससे बुहारी कोमल होजावे। रुई अथवा अम्बाड़ीकी बुहारी बड़ी ही अच्छी होती है। पश्चात् और भी जो ऐसे काम हों उन्हें दया धर्मका ख्याल करते हुए पूरे करके, छने हुए प्रामाणिक शुद्ध–जलसे स्नान करे। बहुतसे मनुष्य और स्त्रियां, विषयसेवन, लघुशंका और दीर्घशंकाके पीछे स्नान और दन्तधावन नहीं करतीं, यह कितनी मलिनताकी बात है ?

हां, यह जरूर है, कि इन कामोंमें अनछने पानीका उपयोग न करना चाहिये। जल छाननेकी आज्ञा दूसरे धर्मोंमें भी पाई जाती है।*

इस प्रकार पवित्र हो अपनी योग्यतानुसार मोटा या पतला; महंगा या सस्ता, स्वदेशी कपड़ा जो कि शुद्ध और साफ हो, पहिनकर प्राशुक द्रव्य-लवंग, बादाम, चावल आदि लेकर जिन मंदिर जावे। जिस ग्राममें जिन मंदिर नहीं उसमें जैनियोंको वास करना उचित नहीं। यदि यात्रा या देशाटनके समय दर्शन न मिलें तो अशुभका उदय विचार एक रस छोड भोजन करे, पर जो ग्राममें जिन मंदिरके होते हुए दर्शन पूजन आदि नहीं करतीं वे अनुचित करती हैं। प्रत्येक व्यक्तिको भोजनके पहिले भगवानके दर्शन और आत्मचिन्तन करनेकी आवश्यक्ता है। मंदिरको जाते समय कीड़ी मकोड़ी, मल,

* दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं, वस्त्रपूतं पिबेजलं।
सत्यपूतं वदेद्वाक्यं, मनःपूतं समाचरेत्॥
संवत्सरेण यत्पापं, कुरुते मत्स्यबंधकः।
एकाहेन तदाप्नोति, अपूतजलसंग्रही॥ (स्मृति)

मूत्र आदिको बचाता हुआ चले, जिससे जीवोंकी रक्षाके साथ साथ अपनी रक्षा और पवित्रता रहे । चमड़ेके जूते पहिन मंदिरको जाना बुरा है। अच्छा हो, यदि उस समय जूते पहिने ही न जायें, और जो पहिने भी जायें तो कपड़ेके। मंदिरमें प्रवेश करनेके पहिले जूतोंको (यदि पहिने हों) उतार, पैरोंको जलसे खूब धोना उचित है। फिर सब प्रकारकी उद्धतता और संकल्प विकल्प छोड़ जयजिनेन्द्र शब्द करती हुई प्रतिमाजीके सन्मुख जावे और जय निस्सहि, जय निस्सहि, जय निस्सहिका उच्चारण कर श्रीजीको तीनवार नमस्कार करे (जय निस्सहि ३ के उच्चारणका कारण ऐसा बताया है कि, यदि कोई देव उस समय दर्शनको आया हो तो एक ओर हटजाए; तुम्हारा व उसका काम अविच्छिन्न रूपसे होता रहे—किसीको बाधा न हो)

श्रीजीके सन्मुख खड़े हो, विचारे—" मैं आत्मस्वरूपके बतानेवाले जिनेन्द्रका दर्शन कर रही हूं । इन्होंने किस प्रकार कष्ट सहन किये हैं ! कैसे कैसे कर्मोंपर विजय पाई है ! कब वह दिन आयगा जब मैं ठीक उसी मार्गपर चलने लगूंगी जिसपर जिनेन्द्र गए हैं, मैं कैसे कैसे पाप कर रही हूं, भूल रही हूं; भटक रही हूं पराएको अपना समझ रही हूं; और स्वप्नको सच्चा मान रही हूं । "

फिर कोई सुन्दर पद, जो तुम्हें तुम्हारी वास्तविकताकी ओर ले जाय, कहो । और भावोंकी निर्मलतासहित स्तोत्र पढ़तीं, मस्तक नवातीं, द्रव्य, क्षेत्र, काल भावके अनुसार एक द्रव्य या अष्ट द्रव्यसे भगवानकी भक्तिपूर्वक पूजन करो। फिर भगवानकी तीन प्रदक्षिणा*

* प्रदक्षिणा देते हुए हाथ जोड़ रहना चाहिये ।

(भगवानकी दाहिनी ओरसे प्रदक्षिणा की जाती है) देवे। प्रदक्षिणा देते हुए प्रत्येक दिशामें तीन आवर्त और एक शिरोनति करे और पश्चात् यह पाठ पढ़े—

श्लोक—दर्शनं देवदेवस्य, दर्शनं पापनाशनम।
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम् ॥ १ ॥

अर्थ—देवोंके देवका दर्शन पापोंका नाश करनेवाला, स्वर्गकी सीढ़ी और मोक्षका साधन है।

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च।
न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम् ॥ २ ॥

अर्थ—श्रीजिनेन्द्रके दर्शन करनेसे और साधुओंकी वंदना करनेसे पाप बहुत दिनोंतक नहीं ठहरते। जैसे छिद्रवाले हाथमें पानी नहीं ठहरता।

वीतरागमुखं दृष्ट्वा, पद्मरागसमप्रभम्।
अनेकजन्मकृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति ॥ ३ ॥

अर्थ—पद्मरागके समान शोभित श्री वीतराग भगवानका मुख देखकर अनेक जन्मोंके किये हुए पाप नाश हो जाते हैं।

दर्शनं जिनसूर्यस्य, संसारध्वान्तनाशनम्।
बोधनं चित्तपद्मस्य, समस्तार्थप्रकाशनम् ॥ ४ ॥

अर्थ—सूर्यके समान श्री जिनेन्द्र दर्शनसे सांसारिक अन्धकार नाश होता है, चित्तरूपी कमल फूलता है और सर्व पदार्थ प्रकाशमें आते हैं अर्थात् ज्ञात होते हैं।

१—जोड़े हुए हाथ घुमानेको आवर्त कहते हैं। २—जोड़े हुए हाथोंपर मस्तक झुकाकर रखनेको शिरोनति कहते हैं।

दर्शनं जिनचंद्रस्य, सद्धर्मामृतवर्षणम् ।
जन्मदाहविनाशाय, वर्धनं सुखवारिधेः ॥ ५ ॥

अर्थ—चन्द्रमाके समान श्री जिनेन्द्रदेवका दर्शन करनेसे सत्य-धर्मामृतकी वर्षा होती है, जन्म जन्मकी दाह ठण्डी होती और सुख–समुद्रकी वृद्धि होती है।

जीवादितत्त्वं प्रतिपादकाय सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणार्णवाय ।
प्रशांतरूपाय दिगम्बराय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय। ६॥

अर्थ—जो जीवादि सात तत्त्वोंको बतानेवाले, सम्यक्त्व आदि आठ गुणोंके समुद्र, शान्त तथा दिगम्बर रूप हैं; उन देवाधिदेव श्री जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार हो।

चिदानंदैकरूपाय, जिनाय परमात्मने ।
परमात्मप्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः ॥ ७ ॥

अर्थ—जो ज्ञानानन्दरूप हैं; अष्ट कर्मोंको जीतनेवाले हैं, परमात्मस्वरूप हैं तथा परमतत्त्व परमात्माके प्रकाश करनेवाले हैं; उन सिद्धात्माको नित्य नमस्कार हो।

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात् कारुण्यभावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥ ८ ॥

अर्थ—हे जिनेश्वर ! आप ही मुझे शरणमें रखनेवाले हो—और कोई शरणमें रखने योग्य नहीं हैं, इसलिये करुणा करके आप, संसारके पतनसे रक्षा कीजिये।

नहि त्राता नहि त्राता, नहि त्राता जगत्त्रये ।
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति ॥ ९ ॥

अर्थ—तीन लोकमें अपना कोई रक्षक नहीं है! रक्षक नहीं है!! रक्षक नहीं है!!! यदि कोई है, तो हे वीतराग देव! आप ही हैं, क्योंकि आपके समान न तो कोई देव आजतक हुआ और न होगा।

जिनेभक्तिर्जिनेभक्तिर्जिनेभक्तिर्दिने दिने।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेस्तु भवे भवे ॥१०॥

अर्थ—मैं यह आकांक्षा करता हूं कि जिनेन्द्र भगवानमें मेरी भक्ति दिन दिन होती जावे और प्रत्येक भवमें सदा बनी रहे।

जिनधर्मविनिर्मुक्तो, मा भवेच्चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोपि दरिद्रोपि, जिनधर्मानुवासितः ॥ ११ ॥

अर्थ—जिन धर्म रहित चक्रवर्ती भी अच्छा नहीं। जिन धर्मका धारी होकर पराया दास तथा दरिद्री होना भी अच्छा है।

जन्मजन्मकृतं पापं जन्मकोटिमुपार्जितं।
जन्ममृत्युजरातंकं, हन्यते जिनदर्शनात ॥ १२ ॥

अर्थ—जिनेन्द्रके दर्शनसे करोड़ों जन्मके किये हुए पाप तथा जरा मृत्युरूपी तीव्ररोग अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार मन लगाकर दर्शन पाठ पढ़े। फिर एक तरफ, जहांसे भगवानकी मुद्रा अच्छी तरह दीखे, खड़े होकर स्थिर चित्त हो, पंचकल्याणक, तथा ध्यानमुद्राका वार वार स्मरण करे और भक्ति भावसे भगवानके गुण गावे—"कि हे त्रैलोक्यनाथ! हे सर्वज्ञ वीतराग! हे देवाधिदेव! हे अनंतचतुष्टय मंडित अर्हत भगवान! तुम्हारी जय हो। धन्य है तुम्हारी ध्यानमग्न मुद्रा और धन्य है तुम्हारा पवित्र नाम! तुम तरण तारण, अधम उधारण हो। संसार—समुद्रसे पार

करनेवाले हो । तुम्हें मेरा नमस्कार हो । इंद्र इत्यादिसे सेव्य तुम्हारे गुण भला कौन कह सकता है ?"

इतना कहनेके पीछे यह या ऐसी ही कोई दूसरी स्तुति पढ़े ।

स्तुति—

प्रभु पतितपावन मैं अपावन, चरण आयो शरणजी ।
या विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरणजी ॥ १ ॥
तुम ना पिछान्यो अन्य मान्यो, देव विविध प्रकारजी ।
या बुद्धिसेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकारजी ॥ २ ॥
भव-विकट वनमें कर्म बैरी, ज्ञान धन मेरे हर्यो ।
तब इष्ट भूलो भ्रष्ट हूवो, अनिष्ट-गति धरतो फिर्यो ॥ ३ ॥
धनि घड़ी अरु धनि दिवस यों ही धनि जनम मेरो भयो ।
अब भाग मेरो उदय भयो, दरश प्रभुको लख लयो ॥ ४ ॥
छवि वीतरागी नग्नमुद्रा, दृष्टि नासापै धरें ।
वसु प्रातिहार्य अनंत गुणयुत, कोटि रवि-द्युतिको हरें ॥ ५ ॥
अब मिटो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि आतम भयो ।
मो हर्ष उर ऐसो भयो, मनु रङ्क चिन्तमाणी लयो ॥ ६ ॥
मैं हाथ जोड़ि नवाय मस्तक, वीनऊँ तुम चरणजी ।
परमोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहु तारन तरनजी ॥ ७ ॥
जांचूँ नहीं सुरवास पुनि, नरराज परिजन साथजी ।
बुध जांचहूँ तुम भक्ति भव भव, दीजिये शिवनाथजी ॥८॥

अर्थ—इस भांति स्तुति कर तीन आवर्त, एक शिरोनति और अष्टाङ्ग नमस्कारपूर्वक दण्डवत करे । फिर नीचेका श्लोक बोलते

हुए गंधोदक-चरणोदक हृदय, नेत्र और मस्तकमें लगावे।

श्लोक-निर्मलं निर्मलीकरणं, पवित्रं पापनाशनं।
जिनचरणोदकं वन्दे, अष्टकर्मविनाशकं॥

सोरठा-जिन तन परम पवित्त, परसमई जगशुचि करन।
सो धारा मम नित्त, पाप हरौ पावन करौ॥

गंधोदक लगा अपना सौभाग्य समझे, परन्तु लेते समय इस बातका ध्यान रखे कि गंधोदक एक या दो अंगुलियोंसे ही लिया जाय, जिससे वह जमीन पर न गिरने पावे और अशुद्ध हाथसे न लिया जाय! गन्धोदकके पास जलका एक कटोरा अवश्य रक्खा जाय, जिससे गंधोदक लेनेके बाद अँगुलियां धो ली जाँय। इतना कार्य कर लेनेके पीछे अवकाशके अनुसार एकाग्रचित्त करके जाप्य, सामायिक और स्वाध्याय आदि करे। स्वाध्याय धर्मका मूल और शान्ति देनेवाला है। ध्यानमें जो आनन्द है वह किसी भी सांसारिक वासना या पदार्थमें नहीं है। शास्त्रों पुस्तकोंके विषयमें एक लेखकने लिखा है—वे (शास्त्र) हमें विना कुछ वेतन लिये पढ़ाते हैं। विना क्रोध किये और भूलों पर विना दंड दिये हमें सिखाते हैं। रात दिन जब चाहे तब हमें पढ़ानेको तैयार रहते हैं। हमारी मूर्खतापर वे न तो हंसते और न चार जनोंमें हमारी दिल्लगी उड़ाते हैं। फिर भला बताओ, शास्त्रों जैसे गुरु और पुस्तकालयों जैसे स्कूल क्या और होंगे? जो मनुष्य धर्मको जानना चाहें; वे निर्दोष और सर्वज्ञ वीतराग कथित धर्मका अवलोकन करें। स्वाध्याय सब तपोंका मूल एक श्रेष्ठ सत्कर्म है।

मंदिरमें विकथा—घर सम्बन्धी चर्चा, लेन देन, हंसी, झगड़ा

आदि नहीं करना चाहिये, क्योंकि धर्म-स्थानोंमें ऐसा करनेसे विशेष पाप बंध होता है ।

श्रावकाचार आदि आचार ग्रन्थोंमें जहां तहां ८४ आच्छादनोंका वर्णन किया गया है । धर्मायतनमें जाकर उनका लगाना उचित नहीं है । मंदिरमें सबसे मैत्रीभाव रक्खें । अपने दुर्भावोंसे उस काल बिलकुल छुट्टी पा जावें । *बालबच्चोंको शुद्ध-मलमूत्रादिसे निश्चिन्त कराके ले जावें और मंदिरमें भी इस बातका ख्याल रक्खें कि बच्चे किसी प्रकारकी अपवित्रता या दूसरोंके धर्म-साधनमें कोई विघ्न न करने पावें ।

धर्म-साधनसे निपटकर स्त्रीको गृहस्थीके कामोंमें लगना चाहिये, क्योंकि पुरुषके लिये धर्म साधन और आजीविका ये दो मुख्य कार्य हैं—

कला बहत्तर मनुजकी, तिनमें दो सरदार ।
एक जीव आजीविका, एक जीव उद्धार ॥ (नीतिकार)

और स्त्रीके लिये धर्मसाधन, गृह-व्यवस्था और सन्तानपालन मुख्य कर्म हैं ।

स्त्रियोंको रसोई शुद्ध बनानी चाहिये । रसोई बनाते समय नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना चाहिये:—

चौकेकी क्रिया—पवित्र भोजन होनेसे मन और बुद्धि पवित्र होती है तथा अच्छे कार्योंकी ओर लगती है । उन्हींके हृदयमें धर्म ठहरता है जो मन, वचन और तनसे धर्माचरण करते हैं । धर्माचरणोंके

---

* बच्चोंके ५ वर्षके हो जानेपर मंदिरमें ले जाकर भगवानको नमस्कार करावे । छोटा दर्शन और णमोकार मंत्र सिखावें । अजान अवस्थामें-बहुत छुटपनमें लेजाना ठीक नहीं है ।

लिये आवश्यक है कि हम अपना खान पान शुद्ध रक्खें—चौके चूल्हे पर खूब ध्यान दें। जल, रसोईकी बर्तनादि सामग्री, ईंधन और रसोईका स्थान इन चारों पर ध्यान देना "चौका" कहलाता है।

जल कुआँ, तालाब, नदी आदि पवित्र जलस्थानोंसे भलीभांति छानकर लाया जावे। छाननेका वस्त्र उज्वल, गाढ़ा ३६×२४ अंगुल हो। इस छन्नेको दुहरा करके छानना चाहिये। यदि बर्तनोंका मुंह बड़ा हो तो, उसी परिणामसे छन्नेको भी बड़ा रखना चाहिये। (प्रत्येक अवस्थामें दुहरा करनेपर भी छन्ना बर्तनके मुंहसे तीन गुना हो) सदा पवित्र और मंजे हुए बर्तनोंमें धीरे धीरे पानी छाना जावे। अनछने पानीकी एक बूंद भी व्यर्थ न गिरे और छने हुए जलमें भी वह न मिलने पावे। अपने हाथसे पानी भरकर लाना सर्वोत्तम है। यदि ऐसा न होसके तो मदिरा, मांसके त्यागी किसी विश्वस्त व्यक्तिसे भराना उचित है।

पानी छाननेके बाद जीवानी—बिलछानी उसी जलस्थानमें ही यत्नपूर्वक क्षेपण करना चाहिये, जिसमेंसे कि पानी लाया गया हो। यदि पानी कुएसे लाया गया हो, तो जीवानी कड़ीदार लोटेसे डाली जाय, जिससे वह बीच ही में न रहकर पानी तक पहुंच जाय। जो लोग जीवानीको यत्नपूर्वक उसी जलस्थानमें क्षेपण नहीं करते, जिसमेंसे कि जल भरा हो तो इससे जल छाननेका उद्देश्य अधूरा ही रह जाता है—उन जल-जीवोंकी रक्षा नहीं होती।

छने हुए जलमें लौंग हरड़ें और लकड़ीकी राख आदि द्रव्य शास्त्रोक्त प्रमाणसे डाल देनेपर उसके रस, गंध, वर्ण और स्पर्श आदि

बदल जाते हैं, तथा जल कायके जीव चय जाते हैं, और त्रसकी उत्पत्ति नहीं होती। इस भांति शुद्ध (प्रासुक) हुए जलकी मर्यादा २ प्रहरकी है। साधारण गर्म जलकी ४ प्रहरकी और उबाले हुए याने अधनके समान गर्म किये जलकी मर्यादा ८ पहरकी है। प्रासुक जल मर्यादा भितर ही उपयोगमें लाया जासकता है। मर्यादाके पश्चात् वह किसी भी कामका नहीं रहता।

दु:खकी बात है कि जैनियोंमें जल छाननेकी विधिका आजकल प्राय: लोपसा होगया है! पानी छाननेके लिये पतला, पुरानी धोतीका टुकड़ा, जाति बिगदरीके भयसे रखते हैं, जिसमेंसे छोटे बड़े सभी जीव बराबर निकलते जाते हैं। भला इस ढोंगसे क्या लाभ है? अनछना पानी पीनेसे अदयाके दोषके सिवाय शरीरमें अनेक रोग भी घर कर लेते हैं। यही कारण है कि संसारसे सभी विद्वान—क्या जैन और क्या अजैन और क्या डाक्टर, वैद्य, हकीम, वैज्ञानिक आदि पानीको छानकर पीनेकी सम्मति देते हैं। हमारे भारतीय वैद्यक शास्त्र तो न जाने कबसे पानी छानकर पीनेकी आज्ञा देते चले आये हैं। लोकोक्ति है कि "जल तो पीजे छानके, गुरुको कीजे जानके" इस उक्तिसे भी हमें छानके जल पीनेकी ही पुष्टि मिलती है। यूरोपियन जातियां यद्यपि अहिंसाका विचार नहीं रखतीं, तो भी स्वास्थ्यके विचारसे पानीको अनेक तरहसे साफ करके पीती हैं।

पानीके छाननेका काम स्त्रियोंकी थोड़ीसी सावधानीसे अच्छी तरहसे होता रह सकता है। सदैव घरमें दो तीन छन्ने रखना चाहिए। पुराने छन्नोंसे पानी बराबर छानते रहना ठीक नहीं। उन्हें अलग कर

देना चाहिए। सबसे अच्छी बात तो यह है कि जलस्थानसे ही पानी छानकर लाया जावे, और फिर जिस समय पीनेकी इच्छा हो छानकर पिया जाता रहे। शाम सुबह सब पानी छानकर एक चौड़े बर्तनमें जीवानी एकत्र करे तथा यत्नाचारपूर्वक उसे जलस्थानमें पहुंचावे। स्मरण रहे, पानी उबालकर और पीछे ठंडा करके पीनेसे शरीरकी नीरोगता बढ़ती है। यही प्राशुक जल पीनेका लाभ है।

भोजनसामग्री—अन्न अवींध (बिना घुना) होना चाहिए। उसका साफ करना और पीसना उजेलेमें होना चाहिए। पीसते समय चक्कीको, कूटते समय ओखलीको और इसी भांति दूसरे दूसरे पदार्थोंको पीसने कूटनेके पहिले भलीभांति देखलो, साफ करलो, जिससे उनमें कोई जीव न रह जाय। चक्की आदिसे आटा आदि निकाल लेनेपर भी उसमें आटे वगैरहका कुछ अंश लगा ही रह जाता है, उसे कोमल बुहारीसे निकाल डालना चाहिये। कितने ही लोग अनाजको धोकर खाते हैं; यह बात भी बहुत अच्छी है; परन्तु छने हुए पानीसे ही धोना चाहिए। बहुतसी स्त्रियां दाल चांवल आदिको बहुत पहिलेसे बीन रखती हैं, और रसोईके समय तनिक भी नहीं शोधतीं। विचारतीं हैं कि शुधे शुधायें तो रखे हैं, पर यह उनकी बड़ी भूल है। उस समय भी जरूर शोधना चाहिए।

आटेकी मर्यादा शीतकालमें ७ दिन, गरमीमें ५ दिन और बरसातमें ३ दिनकी है। इसके पीछे जीवोंकी उत्पत्ति होजाती है। प्रायः प्रत्येक सामान ताजा लाकर ढका रखना चाहिये। वर्षाकालमें प्रत्येक वस्तुको बड़ी सावधानीसे रखना चाहिए, क्योंकि इस ऋतुमें

जीवोंकी उत्पत्ति बहुत अधिक होती है शक्कर, घी आदि मिष्ट और चिक्कण पदार्थोंको तो सभी ऋतुओंमें सावधानीसे रक्खें, क्योंकि ऐसी वस्तुओंमें थोड़ीसी भी भूल होनेपर या तो बाहरसे अनेकों जीव आ जाते हैं; या स्वयं इन वस्तुओंमें ही उत्पन्न हो जाते हैं। वर्षा-ऋतुमें जहांतक होसके भोजनकी बहुत थोड़ी सामग्री रक्खी जावे।

ग्रीष्मकालमें स्त्रियां बहुतसी (दस दस, पांच पांच सेर) सीमी (सिमैयां–बिया) तोड़कर रखती हैं, बरसात लगते ही उनमें इलियां लग जाती हैं। यही हाल मर्यादासे बाहरके पापड़, अथाने (आचार), बड़ियों आदिका है, परन्तु लोग वही वर्षोंका आचार आदि बड़े मजेमें खाते हैं। कभी उन्हें सावधानीपूर्वक देखने दिखानेकी चेष्टा भी नहीं करते। हलवाईके यहांकी मिठाई बाजारू मिठाई भी त्रस जीवोंका सत ही है। उनके यहां भला क्रियासे बनानेवाला और सावधानीसे रखनेवाला कौन बैठा है? ऐसे ही अनेक कारणोंसे तो जैन जातिमें अनेक मारक रोग फैल गए हैं। इन अभक्ष्योंको हमें शीघ्र ही छोड़ना चाहिए।

पुनः खानेके पदार्थोंमें आलू, रतालू, शकरकंद, पुष्प, विदल आदि २२ अभक्ष्य * और पांच उदंबर याने बड़, पीपल, ऊमर,

* २२ अभक्ष्योंके नाम—१ बैंगन, २ द्विदल–छांछ दही या कच्चे दूधके साथ दुफड़िया (द्विदला) अनाज खाना, ३ बहुबीज फल, ४ ओला, ५ रात्रि भोजन, ६ कन्दमूल, ७ मांस, ८ मधु, ९ मदिरा, १० मिट्टी, ११ माखन, १२ विष, १३ अचार (अथाना), १४ पीपल फल, १५ बड़फल, १६ उदंबर फल, १७ कठूमर फल, १८ पाकर फल, १९ अनाज फल, २० तुच्छ फल, २१ तुषार (बर्फ) २२ चलित रस।

कठूमर, पाकर फल तथा ३ मकार याने मद्य, मांस और मधुको त्रस राशि समझ करके कभी भूलकर भी नहीं खाना चाहिये।

रसोई बनानेके पहिले सर्व भोज्य पदार्थ लेकर शोधे तथा ठीक अन्दाज करके फिर रसोई बनावे। प्रथम ही चौकेमें जल लेजाके रक्खे और उसे प्रासुक करले क्योंकि कच्चे जलकी मर्यादा $\frac{3}{4}$ पौन घण्टेकी है और रसोईमें २ या ३ घंटे लगते हैं। सारांश यह है कि, पानी प्रासुक किये बिना काम नहीं चल सकता। आटा गूनकर-माड़-कर शुद्ध स्वच्छ गीले कपड़ेसे ढांक दे। आटा गूनते समय हाथकी अगूंठयां आदि उतार देना चाहिये। फिर अपनी योग्यतानुसार सरस स्वच्छ भोजन बनावे। रसोईको कभी बिना ढांकी न रक्खें, क्योंकि या तो भाफसे अथवा वैसे ही कई कारणोंसे जीव मरकर रसोईमें गिर जायेंगे। भोजन सदैव खूब देखभाल और पीस २ चबवाके करना चाहिये। रात्रिमें भोजन बनाना खाना बुरा है। रात्रि भोजनके विरुद्ध मार्कण्डेयपुराणमें एक जगह लिखा है:—

अस्तंगते दिवानाथे, तोयं रुधिरमुच्यते,
अन्नं मांससमं प्रोक्तं मार्कण्डेयमहर्षिणा।
रक्तीभवंति तोयानि अन्नानि पिशितानि च,
रात्रौ भोजनसक्तस्य ग्रासे तन्मांसभक्षणं॥

भावार्थ—यह है कि रात्रिभोजन मांस भक्षणके समान और रात्रि जलपान रक्तपानके समान है।

रसोई तैयार करके किसी संयमी धर्मात्मा पुरुषको (जो उस समय भाग्यसे प्राप्त होजावे) भोजन करावे, यदि न होवे तो आपके

घरके जेठे योग्य पुरुषको भोजन करावे और हर्ष माने। आजकलके समयमें तो अत्यन्त दुखित भुखित और हीनांग दो एक व्यक्तियोंको भोजन कराना ही बड़े कल्याणका कारण है। धन्य हैं वे व्यक्ति, जो प्रति दिन इसी प्रकार दूसरोंको भोजन कराके भोजन करते हैं। पुरुषोंके भोजनोपरांत स्त्रियां भोजन करें। भोजनके पीछे ही वर्तन साफ कर डालना और चौका लगा डालना चाहिये। जूठे वर्तन अधिक देरतक पड़े रहनेसे उनमें त्रस जीवोंकी उत्पत्ति होजाती है। भिनभिनाती हुई मक्खियां उस जूठे पानीमें (धोवनमें) गिरती—मरती हैं, जिससे हिंसाका दोष लगता है। अथवा अपवित्र कुत्ते बिल्ली उन्हें चाटकर अपवित्र कर देते हैं।

लड्डू, बाबर, घेवर, बूंदी, खारी सेव आदि पक्की रसोईकी मर्यादा—जिनमें पानीका अंश थोड़ा होता है—८ प्रहरकी है। पुआ, पूड़ी, भजिया आदिकी मर्यादा अधिक जल होनेके कारण ४ प्रहरकी है। खाटा, कढ़ी, खिचड़ी आदि कच्ची रसोईकी मर्य्यादा २ प्रहरकी है। जिस रसोईमें पानी न पड़ा हो जैसे मगद आदिकी मर्य्यादा आटेके बराबर जानो। दूध दुहकर तत्काल छानके औंटा रखनेसे शुद्ध रहता है। इस दूधकी मर्यादा ८ प्रहरकी है। गर्म पानी डालकर तैयार की हुई छांछकी मर्यादा ४ प्रहरकी है। कच्चे पानीसे बनाये हुए मट्ठे (छांछ) की मर्यादा कच्चे पानीके बराबर, २ घड़ीकी (३/४ पौन घंटेकी) है। प्राशुक (गर्म) किये हुए दूधमें जामन देनेसे बने हुए दहीकी मर्यादा ८ प्रहरकी है। दही जमानेका सर्वोत्तम उपाय यह है कि, कल्दार रुपयेको सामान्य रीतिसे गर्म करके प्राशुक

दूधमें डाल देनेसे ४ प्रहरके भीतर उमदा दही जम जाता है।

इनके सिवाय अन्य पदार्थोंकी मर्यादा जाननेकी इच्छा हो तो क्रियाकोषसे जानना चाहिए। स्मरण रखना चाहिए कि, मर्यादाके पश्चात् प्रत्येक पदार्थमें त्रस जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है। बिना औटाए हुए दही अथवा छांछके साथ, द्विदल (विदल) अन्न खानेसे अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। बिगड़े हुए स्वादवाले पदार्थ खानेसे स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। इसीलिए हमारे आचार्योंने हमें ताजा और शुद्ध भोजन करनेकी आज्ञा दी है; जिससे कि हम मोटे-ताजे और नीरोग रहें तथा लौकिक और धार्मिक कार्योंको भलीभांति साधित कर सकें।

बर्तन—पवित्र राखसे अच्छी तरह मंजे हुए हों। गाय, भैंस, कुत्त, या बिल्लीके छुए हुए न हों। पाखानेको लिये जानेवाले लोटेसे यदि अच्छे बर्तन छू जाएँ, शूद्रादिने उनमें खाया पिया हो, तो बर्तनोंको अग्निमें डालकर शुद्ध कर लेना चाहिए। हां, यह बात ठीक है कि यदि खाते पीते समय कुत्ता, बिल्ली आदि आजाएँ, तो उन्हें दयापूर्वक कुछ भोजन डाल देना चाहिए। बाजारू दुकानोंपर बाजारू मिठाई खाना, जूते चढ़ाए भोजन या मिठाई पा जाना, कांच और चीनीके बर्तनोंमें जूठे इत्यादिका कोई दोष न समझना बड़ा ही हानिकर है। कमसे कम अपनी आरोग्यता चाहनेवालोंको तो अवश्य ही इन बातोंसे बचना चाहिए।

चौका—रसोईका स्थान अर्थात् चौका ऐसे स्थानमें हो जहांकि कुत्ते, बिल्ली आदि प्रवेश न कर सकें; और कीड़ी मकोड़ी न ठहर सकें

तथा जाला न बन सकें, जहांकी धरती सूखी हो, और हर ऋतुमें सूखी रहसके। जहां भलीभांति प्रकाश आता हो। रसोईके स्थानकी जहां सीमा बंधी हो, ऊपर चांदोवा इस प्रकार बंधा हो जिससे ऊपरसे जीव जंतु और कूड़ाकरकट न गिरने पावे। (चंदोवा, चक्की, उखली, घिनौंची (पनिंडा) आदि स्थानोंपर भी रखना आवश्यक है) चौकाको नित्य कोमल बुंहारी[1]से बुहारके तथा देखभालके, चूल्हेकी राख निकालके, मिट्टी मिले प्रासुक जलसे पोतना उचित है। चौका रातको न लगाया जाय क्योंकि उससे अनेक प्राणियोंका नाश होना सम्भव है। चौका अवश्य लगाना चाहिये। अर्थात् आशय यह है कि, भोजनसामग्री' भोजन स्थान आदिमें जितनी पवित्रता रक्खी जायगी, परिणाम—भाव उतने ही पवित्र होंगे और इससे शरीर और मन उतना ही पुष्ट तथा स्वस्थ (अच्छा) रहेगा। अनेक घरोंमें चौका न लगाया जाकर पानी छिड़क दिया जाता है। अनेक घरोंमें एक ओर रसोई बना करती है और दूसरी ओर राख आदि कूड़ा करकट लगा रहता है। यह बड़ा ही घृणास्पद म्लेच्छ व्यवहार है, ऐसा न करना चाहिये। चौका जिस कपड़ेसे लगाया जाय उसे नित्य ही निचोड़कर सुखा डालना चाहिये। बहुतेरी स्त्रियां उसे वैसाका वैसा मिट्टी पानीमें भिगा रख देती हैं जिससे उसमें बहुतसे कीड़े पड़ जाते हैं। अगले दिन उसी कपड़ेसे (पोतेसे) फिर चौका लगा दिया जाता है और वे जीव बेचारे परलोक सिधारते हैं।

१—ऐसी बुहारियां बंबईमें चार छह आनेको अच्छी मिल जाती है जो कि टिकाऊ भी होती हैं।

गोबरसे चौका करना ठीक नहीं है, क्योंकि गोबरका चौका देरसे सूखता है। और दूसरे, उसमें कीड़े पड़नेकी संभावना रहती है। इस तरह यत्नाचारसे चौका लगा स्नानकर, शुद्ध स्वच्छ वस्त्र पहिने। फिर रसोईका सामान शोध चौकेमें रसोई बनावे। पुरुष भी हांथ पांव धो स्वच्छ वस्त्र पहिन भोजनके निमित्त चौकेमें आवें। यदि चौकेमें बिना नहाये धोए और बिना स्वच्छ कपड़े पहिने घुस जावे तो शूद्रों और हममें अन्तर ही क्या रहे? स्वच्छता—पवित्रता हरजगह अच्छी और लाभप्रद है। गृहस्थी यदि धनवान भी हो, तो भी कुटुम्बके भोजन योग्य रसोई घरकी स्त्रियोंसे ही बनवानी चाहिए। क्योंकि रसोई बनानेवालेके चित्तमें प्रेम व भक्तिभाव होना चाहिए जो नौकरोंमें होना सम्भव नहीं है। स्वयं रसोई बनाई जाय तभी चौकेकी शुद्धता रह सकती है। रसोई बनाना स्त्रियोंका एक व्यायाम भी है।

ईंधन—अवींध और निर्जन्तु सूखी लकड़ीका हो। कोमल बुहारी या कपड़ेसे यदि वह एक बार साफ कर लिया जावे-पोंछ लिया जावे तो अहिंसा धर्मकी अत्यधिक पालना हो। खास करके बरसातमें ईंधनमें असंख्य जीव हो जाते हैं, इसलिये बरसातमें तो बहुत सावधानी करके ईंधन जलाना चाहिए। अच्छा हो यदि कोयला ही जलाया जावे, उसीसे रसोई बनावे। गोबरके कंडे (छाने) जलाना तो जैनियोंको सर्वथा अनुचित है, क्योंकि इनके बनानेमें ही हजारों कीड़ोंका सत्यानाश हो जाता है।

इसी तरह गृहस्थीके अन्य कार्य भी बहुत विचारपूर्वक करने चाहिये। सिर साफ करनेके पीछे जो जूं आदि निकलतीं हैं, उन्हें

मारना न चाहिये, किन्तु, बाहर किसी घनी छायावाले स्थानमें सावधानी पूर्वक रख देना चाहिये। ऐसा ही व्यवहार अन्नमें निकले हुए जन्तुओंके साथ करना चाहिये। उन्हें भी कुछ अन्नके साथ किसी पात्रमें रखके छायायुक्त स्थानमें रख दें।

नहाने धोनेका पानी ऐसे स्थानमें डाला जाना चाहिए तथा पेशाब भी ऐसे स्थानमें की जानी चाहिए जहां जल्दी सूख जाये, क्योंकि किसी भी जगह बहुत गीलापन होनेसे कीड़े उत्पन्न होजाते, दुर्गन्धि फैलती तथा नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होने लगते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति इन पांच स्थावरोंकी रक्षाके लिए आवश्यकतासे अधिक इनका व्यर्थ उपयोग मत करो—ऐसा कि बेकाम पानी डाल दिया जाय, या व्यर्थ धरती खोदी जाय; अथवा यों ही इधर उधर आग जलाई जाए; झाड़, फूल, फल आदि तोड़े जांय, बिना किसी उपयोगके दिया जलाया जाय; ये अथवा इन ही जैसे कृत्य अनर्थ-दण्ड पापके मूल हैं। और गृहस्थका धर्म यही है कि आवश्यकतानुकूल ही स्थावर काय काममें लावे। त्रस कायकी संकल्पी हिंसाको छोड़े। और भी हिंसा अर्थात् व्यापार-धंधे सम्बन्धी हिंसामें यत्नाचार पूर्वक काम करें। जो इससे विपरीत चलते हैं वे निस्सन्तान होते हैं, रोगी और दुखी होते हैं। हिंसाके कडुवे फल भुगतते हैं। हमें धर्मनीति पर चलना चाहिये जिससे हिंसा टले, दयाधर्म पले, शरीर और कुटुम्बकी रक्षा हो तथा लौकिक सुखोंकी प्राप्ति हो।

चतुर्थ प्रकरण ।

ऋतुक्रिया-विचार ।

जो नारी ऋतुक्रियामें, बरते सविधि सयान ।
ताके वर सन्तान है, सुख-यश-बुद्धि निधान ॥

स्त्रियोंके उदरमें एक डिंब कोष रहता है, जिसकी चर्मस्थलीके रक्तसे प्रतिमास अंडेके समान एक छोटा पदार्थ उत्पन्न होता है। क्रमानुसार महिना पूर्ण होनेपर यह अंडा फटकर गर्भस्थलीके ऊपर नाभिसे जा मिलता है; और रक्तादि, मूत्र-मार्ग द्वारा बाहर निकल जाता है। इस प्रकार किसीके दो तीन और किसीके पांच सात दिन तक निकलता रहता है, ऐसी क्रियायुक्त स्त्रीको पुष्पवती या रजस्वला कहते हैं। मासिक धर्म होनेका नियम तीन दिनका है इससे कम या अधिक रोगका कारण होता है। इन दिनों उसे गृहस्थीके प्रत्येक कार्यसे अलग रहना चाहिये। किसी भी वस्तु और बालबच्चोंको न छुए। एकांतमें एक जगह बैठे। कितने अफसोसकी बात है कि आजकल रजस्वला स्त्रियां पानी भरना, पीसना, वर्तन मलना आदि अनेक काम करती हैं। पर यह वैद्यक शास्त्रके विरुद्ध है। वैद्यकशास्त्र बतलाता है कि मासिक धर्मके समय स्त्रीको सुस्थ और शांत भावसे रहना चाहिये, किसीका भी मुंह नहीं देखना चाहिये, क्योंकि विचारों, घटनाओं और दृश्योंका प्रभाव आगे होनेवाली सन्तानपर अभीसे पड़ सकता है। पापियोंकी छाया पड़ जाने अथवा चित्त चलायमान

होजानेसे भावी सन्तानपर बुरा असर पड़ता है। इसी सम्बन्धमें एक मनोहर कहानी नीचे लिखी जाती है—

एक ग्राममें चार अन्धे रहते थे। वे चारों ही गुणवान और आपसमें मित्र थे। उनने विचारा कि 'गांवका जोगी अन्य गांवका सिद्ध' हो न हो, चलो अपन चारों कहीं बाहर चलें, जिसमें आजीविका चले और गुण विख्यात हों। उनमेंसे पहिला रत्नपरीक्षक, दूसरा अश्वपरीक्षक, तीसरा स्त्री परीक्षक और चौथा पुरुष परीक्षक था। उन चारोंने चल दिया और एक बड़ी राजधानीमें पहुंचे। वहांके राजासे मिलकर आजीविका—प्राप्तिकी प्रार्थना की। राजाने पूछा कि परदेशी सूरदासो! तुममेंसे प्रत्येकमें क्या क्या गुण हैं सो बताओ। प्रत्येकके अपना अपना गुण निवेदन करनेपर राजाने उनमेंसे प्रत्येकको १ सेर आटा, १ छटांक दाल, एक तोला घी, और १ तोला नमक प्रतिदिन दिये जानेकी आज्ञा दे दी अतः चारों सूरदास खाते पीते आनंद करते वहीं राजधानीमें रहने लगे।

संयोगसे एक दिन एक जौहरी बहुतसे जवाहरात लेकर राजधानीमें आया। तब राजाने रत्नोंकी परीक्षा करनेके लिए, उस रत्नपरीक्षक सूरदासको बुलाकर कुछ अच्छे रत्न ले देनेको कहा। उस सूरदासने कुछ चोखे—उत्तम रत्न ढूंढकर राजाको दिये और कहा कि ये चोखे हैं। यदि ये खोटे होंगे तो इन्हें घनकी चोट दिलवाकर देख लीजिये, फूट जायँगे। असली-पक्के रत्न होंगे तो कभी भी फूटनेके नहीं। सूरदासके कहे अनुसार रत्नोंकी परीक्षा की गई और वे चोखे पक्के रत्न सिद्ध हुए। तब राजाने उस रत्नपरीक्षक सूरदासको बहुतसा पुरस्कार दिया और घीकी मात्रा बढ़वा दी।

इसी प्रकार एक बार एक अच्छा पुष्ट और सुन्दर घोड़ा, राजाने अश्व परीक्षक सूरदासको सौंपा और परीक्षा करनेको कहा। सूरदासने घोड़ेके अंगोपाङ्ग टटोल कर कहा—राजन्! इस सब सुलक्षणोंवाले घोड़ेमें एक यह कुलक्षण है कि जलमें प्रवेश करते ही यह बैठ जायगा। राजाने परीक्षा की तो सचमुच जलमें धंसते ही घोड़ा बैठ गया। परीक्षा कर चुकने पर राजाने सूरदाससे पूछा कि तुमने घोड़ेका यह दोष कैसे जान लिया? तब सूरदाससे कहा कि जिस तरह वैद्य नाड़ी टटोलकर रोग जान लेते हैं, उसी तरह इसके अंग और नाड़ियां टटोलकर मैंने इसका यह दोष जाना। बात यह है कि इसके पेटमें मुझे एक ऐसी नस मिली, जो अपने प्रमाणसे बहुत मोटी थी, और तब मैंने सोचते विचारते पता लगाया कि, इस घोड़ेकी मांने भैंसका दूध पिया है; जिसकी गर्मीका अंश इस घोड़ेके अंगमें भी है। राजाने पहिले सूरदासकी तरह इसे भी पुरस्कार आदि दिए।

एक दिन राजाने तीसरे स्त्री परीक्षक सूरदासको बुलाकर कहा कि आज तुम महलोंमें जाकर मेरी रानीकी परीक्षा करो और बिलकुल सच सच हाल मुझसे आकर कहो। पश्चात् राजाने रानीको खबर करवाई कि थोड़ी ही देरमें एक सूरदासजी तुम्हारे महलमें आनेवाले हैं, सो तुम सावधानीसे इनका आदर-सत्कार करना। रानीने खबर पाते ही अपना खूब शृंगार किया और ऐसा शृंगार किया कि जिससे बढ़कर हो न सके। शृंगार करके शय्यापर बैठने ही जाती थी कि सूरदासजी आ पहुंचे। रानी हाथमें कुछ भेंट ले खांसती खखारती हुई, जल्दी जल्दी घमघमाती द्वार तक पहुंची। सूरदास इन ऊपरी बातों

हीसे उसकी परीक्षा करके राजाके पास लौट गया और राजाके पूछनेपर कहा—अपराध क्षमा हो, आपकी रानी किसी ओछे घरकी बेटी जान पड़ती है। यदि उनकी माता क्षत्राणी है तो परपुरुषरता है; जो पिता क्षत्रीय है, तो यह किसी नीच मांकी बेटी है। सुनते ही राजाने सूरदासको तो घर जानेकी आज्ञा दी और आप शीघ्र ही रानीके पास पहुंचे और बड़ी खिन्नतासे बैठे।

रानीने पूछा, महाराज! उदास कैसे? राजाने कहा, मैं जो बात पूछता हूं उसे बिल्कुल सच सच बताना, कुछ छुपाना मत। किसी भांतिका डर मत रखना, क्योंकि उसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। पूछना यह है कि, तुम किसकी पुत्री हो? अपने माता पिताका वास्तविक परिचय दो। रानीने राजाके चरणोंपर गिरके कहा—महाराज! मैं बांदीकी कूंखसे हूं। चाहे मारिये, चाहे पालिये। आपके साथ ब्याह होनेका कारण यह है कि, जिस कन्यासे आपकी मंगनी हुई थी, वह ठीक विवाहके समय मर गई। तब इस मृत्युकी बातको छिपाकर मेरे साथ आपकी शादी कर दी गई। राजाने सुना, और दरबारमें आया। सूरदासको बुलाकर पूछा कि सूरदास! तुमने कैसे जाना कि मेरी रानीके जाति वंशमें कोई अन्तर है! सूरदास बोला—महाराज, आदमीकी योग्यता हैसियत दो बातोंसे जानी जाती है—एक तो बोलनेसे, और दूसरे शरीरकी क्रियासे अर्थात् चलने, फिरने, और बैठनेसे तथा वस्त्राभूषण आदि ठाटबाटसे। सो ही किसी कविने कहा है कि "भले बुरे सब एकसे, जौलों बोलत नाहिं" और "बड़े बड़ाई ना तजें, बड़ो न बोलें बोल, ॥" मैंने भी रानीकी परीक्षा बोलने

और चलने फिरनेसे की है। जो बड़े घरकी बेटियां हैं, जिन्हें मायके (पीयर) और ससुरालकी शरम है, माता पिताकी और सास ससुरकी प्रतिष्ठाका ध्यान है, तथा जो अपयश और पापोंसे डरती हैं; वे चलने फिरने बैठने उठने आदिमें मर्यादा उल्लंघन नहीं करती हैं। छिछलापन—उथलापन नीचताका द्योतक है।

कुटिला स्त्रियोंके विषयमें कहा है:—

१—अपने पिताके ग्राममें, जहं तहं फिरैं मतिमन्द ज्यों।
डोलती घर घर फिरैं, बिन हेतु ही स्वच्छन्द त्यों॥
२—जहं होय मेला तथा कौतुक, देखनेको जावहीं।
पर पुरुष बैठे होंय बहुते, होय तहं ठाढ़ी सही॥
३—बहु भ्रमन पसंद विदेश जाको, एकली जहं तहं फिरैं।
व्यभिचारिणी जे नारि कुटिला, प्रीति तिनहूंतें टरैं॥
४—नहिं लाज काहूकी करैं, निज पति निरादर जासुके।
वे नारि कुलटा पापिनी, ये जान लक्षण तासुके॥
५—क्षणमांहि रोवैं जो हसैं, उन्मत्त मदमें नित रहैं।
नहिं होय तोषित भोगसूँ, नित कामकी बाधा दहैं॥
६—चलतीं भटकतीं चाल आतुर, स्वाद जिव्हाका चहैं।
ऐसी कुनारी स्वतः नाशैं, जयदयाल जैनी कहैं॥

हे राजन्! कुलवन्ती भार्या छुपाने योग्य अंगोंको सदा छुपाये रखती है। नीची दृष्टि करके चलती है। किसीसे भी चाहे जैसा सम्भाषण नहीं करने लगती है। कुटुम्ब भरसे प्रीति, और जीव मात्रपर करुणाभाव रखती है। दुखित भुखितका दुख दूर करती है। धर्मात्मा

जीवोंसे पवित्र प्रेम रखती है। देव, धर्म और सच्चे गुरुकी भक्ति करती है। देवदर्शन, स्वाध्याय आदि धर्मकार्यमें अनुरक्त रहती है। प्रत्येक सामान स्वच्छ सुव्यवस्थित रखती और प्रत्येक काम पूरा करती है। मकान भी बिल्कुल स्वच्छ और सजीला रखती है। रसोई सुस्वादु और शुद्धतापूर्वक करती है। ऐसी कुलवन्ती भार्या होनेसे घर स्वर्ग बन जाता है थोड़ीसी भी आयसे (आमदनीसे) ऐसी गृहस्थीका निर्वाह बड़े सुचारु रूपमें बड़े अच्छे ढंगसे होता जाता है। और लोग कहते हैं कि यह स्त्री कैसी सती लक्ष्मी है। यही गृहस्थी सुखी है।

बहुतेरी श्रीमतियां ऐसी होती हैं कि जहां उन्होंने गृहस्थीमें पैर रखा कि गृहस्थी तीन तेरह हुई। जहां तहां सामान बिखरा पड़ा रहता है; मकान मैला होता है, प्रत्येक काममें अधूरापन रहता है और प्रत्येक बातमें अव्यवस्था (ढील पोल) होती है। उनकी मूर्खतासे घरमें फूट और नानाप्रकारके रोग फैलते हैं। (मैलापन और बुरी रसोई, तथा चित्तकी अस्वस्थता ही रोगके कारण हैं) जहां आलसी, दरिद्र और मूर्ख स्त्रियां हुई वहां शोक, दुःख और अकीर्तिका घर ही समझिए। ऐसी स्त्रियोंकी सन्तति भी इन्हीं जैसे कुलक्षणोंसे भूषित होती है। बुद्धि, विद्या, धर्म, कर्म, सत्य, शील और संयम आदिसे तो वह बिलकुल कोरी होती है। हां, सप्त व्यसनोंमेंसे कोई एक अथवा अनेक व्यसन, रोग और अनेक कुलक्षण अवश्य ही उसमें जन्म-सिद्ध होते हैं। वह अल्पायु होती है। सो महाराज, घबराइये नहीं। इन्हीं सब बातोंपर और बहुत कुछ अनुभव पर वह स्त्री परीक्षा

निर्भर है, और इसीतरह मैंने भी परीक्षा की है। क्षमा कीजिए।

राजाने इसे भी पुरस्कार दिया और घीकी मात्रा बढ़वा दी। राजाके मनमें बड़ा कौतूहल हुआ और उसने चौथे सूरदासको बुलवाकर कहा–सूरदास! तुमने कहा था कि तुम पुरुष–परीक्षा अच्छी जानते हो। अच्छा, निस्संकोच हो मेरी सच्ची परीक्षा करो। सूरदासने कहा–महाराज! यदि आप पीछे 'क्यों और कैसे' करना चाहें, तब तो क्षमा कीजिए; मुझसे परीक्षा न करवाइये और यदि जितना कहूं उतने ही पर सन्तोष कर लेना, चाहें तो आज ही कथा करूं, मैंने बहुत पहिलेसे आपकी परीक्षा कर रक्खी है, सो सुनिये। राजाने इस बातको स्वीकार करके कहा कि अच्छा कहो। तब सूरदासने कहा–महाराज! आपकी आज्ञानुसार निवेदन है कि, आपका स्वभाव वैश्यों–बनियों–का सा है। सारी सभा समेत राजा बड़ा ही चकित हुआ। राजा विचारवान था। सोचने लगा–क्या मेरी माता दुराचारिणी हैं? सच है, अग्नि, जल, नदी, सर्प, सिंह, स्त्री, जुआरी, चोर और जार आदि कुटिल स्वभाववालोंका विश्वास क्या? इसीलिये तो किसी कविने कहा है:—

तीनों ही त्रिलोक बीच, जेती हैं वनस्पती,
लेखनी सम्हारे ताकी, करके तुरतजू।
तीनों ही त्रिलोक बीच, जेते हैं समुद्र द्वीप,
पर्वतकी स्याही कर, आनके भरतजू॥
तीनों ही त्रिलोक बीच, परी है जो जेति भूमि,
ताहीके सम्मार आछे, पत्र छे पत्र करतजू।

शारदा सहस्र कर करके लिखत सदा,
कामिनी चरित्र तऊ, लिखे न पारतजू ॥

राजा इसी भांति सोचता विचारता सभासे उठ गया और राजमाताके पास पहुंचा। बड़ी नम्रताके कहने लगा कि मां! भवितव्य बलवान है। बड़े बड़े देव चक्रवर्ती आदि उसके चक्रमें आ जाते हैं। इसी भांति यदि तुम भी आगई हो तो चिंता नहीं। सत्य कहना कि मेरे स्वभावमें क्षत्रियोचित उदारतादि गुण क्यों नहीं हैं? माताने कहा कि पुत्र! बात यह है कि एक दिन मैं छतपर बैठी २ अपना शृंगार कर रही थी, उसी समय कल्याणराय सेठ अपने छतपर बैठा बैठा एक सुन्दर रागनी गारहा था। अकस्मात् दोनोंने दोनोंको देखा, अवसर पा दुर्भावनाने जन्म लिया। ठीक उसी रातको तुम्हारे पितासे मैं गर्भवती हुई। सो और कुछ नहीं है, केवल उस दुर्भावनासे ही तुमपर यह प्रभाव पड़ा है, क्योंकि ठीक उसी दिन मैं मासिक धर्मसे निश्चित हुई थी। पुत्र! तुम विश्वास करो। मैं किये हुए पापोंको छुपाकर घोर अपराधिनी नहीं होना चाहती। जो बात थी मैंने स्पष्ट कह दी है।

राजा वहांसे दरबारमें आया। चारों सूरदासोंका अच्छा वेतन बांधकर सभामें रक्खा। सोचना चाहिये कि माताके विचारोंका और विशेष कर ऋतुकालके विचारोंका संततिपर कितना असर पड़ता है कि कहां तो रणशूर, तपशूर और दानशूर क्षत्रियका पुत्र और कहां क्षुद्रहृदय, अनुदार और स्वार्थी वणिकोंका सा स्वभाव?

ऋतुकालमें कैसी सावधानी रखनी चाहिये सो संक्षेपमें नीचे लिखी जाती हैं—

ऋतुस्राव होना प्राकृतिक नियम है, और वह स्त्रियोंको हर महीने हुआ करता है। कभी कभी यह कुछ जल्दी और कभी कुछ देरीसे भी होता है, परन्तु जब नियमित रूपमें कुछ अधिक कम दिनोंमें (अर्थात् पन्द्रह दिन या बीस दिनमें) अथवा अधिक ऊंचे दिनोंमें (अर्थात् डेढ़ डेढ़ दो दो महीने या इससे भी ज्यादा दिनोंमें) आने लगे तब समझना चाहिये कि यह किसी रोगसे विकृत होगया है। और इसकी योग्य चिकित्सकसे चिकित्सा करानी चाहिये।

किसी रोग आदिके कारणसे यदि १८ दिनके पहिले रजोदर्शन हो तो उसकी शुद्धि स्नान मात्रसे हो जाती है। और यदि १८ दिनके पीछे हो तो उसका पूरा अशौच मानना चाहिये।

रजोवती स्त्रीको किसी भी प्रकारकी कुचेष्टा और नदीमें स्नान करना सर्वथा वर्ज्य है। (न करना चाहिए)

जब स्त्रीको ज्ञान पड़े कि रजोदर्शनसे मेरे कपड़े अशुद्ध होगए हैं, तो उसी समयसे किसी वस्तुको न छुए। यदि भोजन करते समय रजोदर्शन हो, तो भोजन छोड़कर स्नान करे, पश्चात् भोजन करे। जो ऐसी अवस्थामें यदि बच्चेको किसी वस्तुके स्पर्श करनेका अवसर हो तो बच्चेको स्नान करा ले।

एकान्त स्थानमें रहे और आत्म चिन्तवन करे अपनी अवस्थाको विचारे और देश जाति तथा धर्मकी उन्नतिके उपाय सोचे। शय्यापर शयन न करे, किन्तु चटाईपर सोवे। यदि चटाईपर न सो सके तो ऐसे कपड़ोंपर सोवे जो नित्य धोये या धुलाए जाकर शुद्ध किये जा सकें। गरिष्ठ भोजन और पान इलायची आदि मसाले भक्षण

न करे। शृंगार न करे, आंखोंमें सुरमा न आंजे न लगावे। गान न गावे। हंसी मसखरी न करे, मंदिरमें न जावे। पतिसे भी बात-चीत या हंसी न करे। ऐसे समयमें यदि कोई मूर्ख पति काम सेवन करे तो उसे सुजाक, गर्मी आदि भयानक रोग हो जानेकी अत्यधिक संभावना है! वैद्यकके सिद्धांतोंके अनुसार, इस समयके काम सेवनसे, एक तो गर्भ नहीं रह सकता और यदि कंथचित् रह जाय तो बुद्धिहीन, दुष्ट, हीनाङ्ग (अपूर्णांग), और कुमार्ग-प्रिय सन्तान होती है। ऋतुमती स्त्रीके स्पर्शसे बहुत ज्यादा बचना चाहिये। उसकी परछाई मात्रसे, ताजे बने और बनते हुये पापड़ बड़ियां और आचार बिगड़ जाते हैं।

रक्तस्राव जिस दिनसे आरंभ हुआ हो उसके चौथे दिन (अर्ध-रात्रिके पीछे आरंभ हुआ हो तो दूसरे दिनसे शुमार करना चाहिए।) स्नानकर शुद्ध हो गृहस्थी सम्बंधी कार्यकर सकती हैं। शृंगार आदि भी आज कर सकती हैं। पांचवें रोज नहा धोकर भगवानकी पूजन, शास्त्र स्वाध्याय और रसोई आदि भी कर सकती हैं। जो स्त्री इस प्रकार नियमपूर्वक आचरण करती है, वह यदि पहिले दिन गर्भवती हो जाय (ऋतुस्नानके पश्चात्) तो सुन्दर सौभाग्यशालिनी, सुलक्षणा और धर्मात्मा सन्ततिको जन्म दे। यदि दूसरे दिन गर्भवती हो तो किसी सुयोग्य प्रतापयुक्त सन्ततिको जन्म दे। और इसी तरह तीसरे और चौथे दिन आदिमें गर्भ धारण करनेपर भी योग्य सन्तान होती है।

परन्तु ऐसा हो कैसे? हमारी जातिमें कूट कूटकर अज्ञान भर गया है, जिसके फलस्वरूप हमारी जाति निकृष्ट, निर्बल और मूर्ख होती जा रही है। किया क्या जाय? लोग शास्त्रोंकी सुनहरी बातें

मूल मद हैं। सच्चे हितैषियोंकी उपदेश पूर्ण बातोंपर ध्यान नहीं देते। जाति और धर्मके उदय चाहनेवाले उपदेशकों और प्रबोधकोंकी दिल्लगी उड़ाते हैं। उन्हें अपमानित करते हैं। अखबार–गजटोंसे प्रेम नहीं है, फिर किस रास्तेसे ये सुमार्गपर आयेंगे सो भगवान जाने। भला, उपर्युक्त कार्यवाहीसे किस तरह हमें धर्म–अधर्म, कर्तव्य-अकर्तव्य, न्याय-अन्याय और योग्य अयोग्यकी पहिचान हो? कुछ विद्वानोंकी दशा तो ऊपर लिखे जैसी हुई। अब रहे स्वार्थ और अपना उल्लू सीधा करनेवाले मतलब गांठनेवाले वे गुणवान, जिनकी समाजमें कुछ चलती है। सो यदि, वे स्वार्थी हैं तो न्यायका उपदेश नहीं कर सकते–सुसम्मति नहीं दे सकते, क्योंकि इससे उनके इष्ट कार्यमें विघ्न पड़ सकता है। रहे श्रीमान् सज्जनगण, सो प्रतिशत दो एकको छोड़के शेष विद्या–शत्रु और धनके मदसे उन्मत्त हैं, उन्हें मनुष्य जीवनके उपयोग और कर्तव्यका ध्यान ही नहीं है। धर्मकी वास्तविकताको वे बेचारे जानते ही नहीं हैं।

अब हे डूबती हुई समाज–नौकाके निरवलम्ब आरोहियो सवारो! हे भाई बहिनो! किसीका आश्रय न ताको; अपने शास्त्रोंका खूब बारीकीसे पठन और मनन करो; खूब विद्योपार्जन करो; वास्तविक धर्म पहिचानो, कर्तव्य और अकर्तव्यकी परिभाषा सीखो, पुण्य–पापकी पहिचान करो, जिससे तुम्हारा कल्याण हो। स्मरण रक्खो, तुम अपने बुरे भले भाग्यके बनानेवाले आप हो।

पंचम प्रकरण ।

मिथ्यात्व-निषेध ।

कुगुरु कुदेव कुधर्म औ, अग्रहीत मिथ्यात्व ।
सेवनकर जग-जन-दुखी, भोगों तीव्र असात ॥

तुमने क्या कभी विचार किया है कि जीव, पुद्गल आदि षट्द्रव्य और जीव, अजीव, आस्रव, आदि सात तत्वोंका स्वरूप क्या है? और इनका श्रद्धान करनेसे क्या होता है? क्या कभी सोचा है कि मैं कौन हूं? कहांसे आई हूं? मेरा इन कुटुम्बियोंसे सम्बंध होनेका कारण क्या है? इस पर्यायके पीछे मुझे कहां जाना होगा? मेरे साथ कौन कौनसी सामग्री जाएगी? मैं रात दिन जो कुछ बुरा करती हूं इसका फल क्या होगा? परलोक क्या है? तुमने कभी इन बातोंको नहीं सोचा, और इसलिए अन्धोंकी नाई मनमाने मार्गपर चल रही हो। तुम्हें आवश्यक है कि सुगुरु, सुदेव और सुधर्मका समागम करो, निःस्वार्थी विद्वानोंका व्याख्यान सुनो; तब तुम्हें मालूम हो जायेगा कि आत्मा किस तरह अपने आपको भूल रहा है; शरीरसे प्यार कर रहा है, और उसके लिये—उसीके भरण पोषण और रक्षाके निमित्त—मनुष्य, तिर्यंच और नर्क पर्यायोंमें भ्रमण करता है; पुण्यपाप उपार्जन करता है; और उसके अनुसार सुख दुःख उठाता है। कोई भी देवी देवता, या परमेश्वर उसे रोकनेमें असमर्थ हैं। अर्थात् प्रत्येक आत्मा अपनी भलाई और बुराई करनेमें स्वतंत्र है।

उसके मार्गमें उसके सिवाय कोई दूसरा कांटे नहीं बिखा सकता-रोड़े नहीं अटका सकता। इसलिये हमें मिथ्या कल्पनाओंको छोड़ देना चाहिये और गृहस्थके धार्मिक षट्कर्मोंमें दत्तचित्त रहना चाहिये।

कर्तव्य पालनेवाले ही पुण्य उपार्जन करते हैं और पुण्यवान ही सुख भोगते हैं; परन्तु जो कोई भी अपना हित भूलता है—श्रावक कुल, जिनधर्म और सत्य उपदेशके समागममें या धर्ममें संलग्न नहीं होता—वह अपनी इस अज्ञानतासे अन्तमें दुःख उठाता है। बहुतसी स्त्रियां सती, दुर्गा, सैय्यद आदिकी पूजा करती हैं; पीपल बड़ आदिको किसी फलकी आशासे सींचती हैं; गोबर या मिट्टीके देवता बना पूजती हैं; भीतोंपर भी देवताओंके चित्र निकाल उनकी पूजन-अर्चन करती हैं; सूर्य चन्द्रमाको अर्घ्य देती हैं; दिवालीको लक्ष्मी-रुपये, असर्फी आदिकी पूजा करती हैं, एकादशी अथवा चौदसको देव उठावनी करती हैं; पूर्णिमाको गंगामें स्नान करती हैं; और पूजती और महादेवको जल चढ़ाती हैं; शिवरात्रि और ग्रहणका व्रत करती हैं; अनेक पीर, फकीर और साधुओंको पूजती हैं; और इस तरह धर्म छोड़तीं, पैसा बरबाद करतीं, और अपने अमूल्य सतीत्वका भी बलिदान कर देती हैं।

उन्हें सोचना चाहिये कि संसारमें सब जीव अपने किये कर्मोंका फल भोगते हैं। इन्द्र, जिनेन्द्र और कोई भी देवदेवी उसमें थोड़ा भी अन्तर नहीं ला सकते। सच्चे देव, शास्त्र और गुरुको माननेसे चित्त निर्मल होता है; रागद्वेष घटता है; जिससे पुण्यके साथ सुखकी प्राप्ति होती है, परन्तु रागी द्वेषी देव और गुरु तथा असर्वज्ञ भाषित

धर्मके समागमसे कषायें बढ़ती हैं, और पापका बन्ध होता है, और पापके बन्धसे दुःख होता है। कभी कभी स्त्रियोंके निर्बल हृदयोंमें भयका भूत और व्यभिचारका ब्रह्म-दैत्य घुस बैठता हैं, सो कभी कभी तो वास्तवमें कोई भूत पिशाच आ सताता है, (बेचारोंका भक्तोंपर ही जोर चलता है) और नहीं तो ये केवल बहाने मात्र होते हैं। कहनेका सारांश यह है कि जैन सरीखी उत्तम जातिमें, श्रावक सरीखे उत्तम कुलमें जन्म लेकर, सर्वोत्कृष्ट सर्व दोष रहित और सर्वगुण सम्पन्न जिनेन्द्रके उपासक बनकर हम क्यों ऐरों गैरोंको ढूंढ़ते फिरते हैं? यह तो वही हुआ कि अपने हीरेका कुछ भी मूल्य न करते हुए दूसरोंके कांच लेनेको दौड़ा जाय। इन्हें सोचना समझना चाहिए और जैन धर्मके द्वारा अपना कल्याण करना चाहिए। दूसरोंकी देखादेखी हमें गड्ढेमें न गिरना चाहिए-कुगुरु, कुदेव और कुधर्मकी पूजा अर्चासे बचना चाहिए। थोड़ा विचार करना चाहिए कि, जैनधर्म और अन्य धर्मोंके सिद्धांतोंमें कितना और कैसा अन्तर है! कहां जैनधर्म तो मोक्षका साधक, और अन्य धर्म मोक्षके बाधक, अर्थात् संसारके साधक।* यह जीव विना पूरी वीतरागताके कदापि निष्कर्म याने मुक्त नहीं हो सकता; और उसे वीतरागता प्राप्त करनेका साधन

* जीव जबतक शुभाशुभ कर्मोंको करता है तबतक नियमसे उसका जन्म मरण होता रहता है, इसको संसार कहते हैं, परन्तु जब यह जीव कर्मरहित हो शुद्ध अवस्थाको प्राप्त हो जाता है, तब मुक्त कहलाता है। दूसरे मतोंमें बहुधा स्वर्गको ही मोक्ष माना है। अथवा मोक्षका-स्वरूप यथार्थ नहीं कहा है। इसलिये वे धर्म सच्चे मोक्ष व उसके कारणोंसे भी अनजान है, और इसीलिये मान्य नहीं है।

संसारमें एक जैनधर्म ही है, जिसमें मानो वीतरागता कूट कूटकर भरी गई है। कवि भूधरदासजीने अपने जैन शतकमें एक जगह कहा है—

कैसे कर केतकी कनेर एक कही जाय,
आक दूध गाय दूध अन्तर घनेर है।
पीरी होत रीरी पै न रीस करै कञ्चनकी,
कहां कागवानी कहां कोयलकी टेर है॥
कहां भानु तेज भारो कहां आगिया विचारो,
कहां पूनोंको उजारो कहां मावस अँधेर है।
पच्छे छोर पारखी निहारो नेकु नीके कर,
जैन बैन और बैन इतनो ही फेर है॥

सम्पूर्ण शास्त्र यही कहते हैं कि विष खाना, अग्निमें जलना, जलमें डूब मरना आदि अज्ञानताके कार्य तो एक ही जन्ममें दुःख देनेवाले हैं (?) परन्तु आत्मस्वरूपके भुलानेवाले, अकर्तव्यके करानेवाले, ज्ञानशून्य, जगतके ठगनेवाले कुगुरु आदिका पूजन वंदन अनेक जन्मके, जन्म मरणका कारण होता है। उपदेश सिद्धान्त रत्नमालामें कहा है—

सप्पो इक्कं मरणं, कुगुरु अणंता देइ मरणाई।
ता वर सप्पो गहियं, मा कुगुरु सेवणं भद्द॥

अर्थात् सर्पके काटनेसे तो एक ही बार मरण होता है, पर कुगुरुके सेवनसे अनंत मरण होते हैं। इसलिये हे भद्र सज्जनों! सांपका ग्रहण करना तो भला, परन्तु कुगुरुका सेवन सर्वथा त्याज्य है।

जो स्त्रियां पुत्र, सम्पदा और सुख आदिकी इच्छासे ढोंगियोंको

पूजती मानती हैं, वे उनके द्वारा ठगाई जाती हैं, व्यभिचारिणी बनाई जाती हैं। शास्त्रोंमें कहा है:—

जह कुठवेस्सा रत्तो, मुसिज्जमाणोवि मस्मये हरिसं।
तह मिच्छवेस मुडिया, गये पिण मुणन्ति धम्म णिहं॥

अर्थ—जैसे कोई वेश्यासक्त पुरुष धनादिक ठगाता हुआ भी हर्ष मानता है, वैसे ही मिथ्यात्व भावसे ठगाए हुए जीव अपनी धर्म-निधिके नाश होनेका कुछ भी विचार नहीं करते हैं।

जो स्त्री-पुरुष मंदिरको नहीं जाते, सुचित्त हो दर्शन नहीं करते, शास्त्र नहीं सुनते और विद्वान पंडितों द्वारा कभी तत्त्वोंके स्वरूपका निर्णय कर, कर्तव्य और अकर्तव्य स्थिर नहीं करते, भला उनका विश्वास एक जगह कैसे स्थिर रह सकता है? वे कभी तो उन्हें नमस्कार करते, कभी इनकी पूजा करते, कभी अमुकजीको नारियल चढाते, और कभी नमुकजीके यहां भंडारा कराते हैं। जैसे सडा नारियल या खोटा पैसा अनेक घरोंमें चक्कर लगाता फिरता है तैसे ही उन स्त्री पुरुषोंका माथा, अनेक देवियोंके आगे फूटता फिरता है। धर्म परीक्षामें कहा है:—

छप्पय—सर्व देव नित नमे, भिक्षुक गुरु माने,
सर्व शास्त्र नित पढे, धरम अधरम नहिं जाने;
सर्व विरत वितरे, सर्व तीरथ फिर आवे,
परब्रह्मको छोड, अन्य मारगको ध्यावे,
इस प्रकार जो नर रहे, इसी भांति शोभा लहे।
आश्चर्य! पुत्र वेश्या तनो, कहो पिता कासों कहे॥

अजैन लोग जैनियोंकी दिल्लगी उडाते हैं और कहते हैं कि जैनी देवी देवताओंकी कितनी निन्दा करते हैं, परन्तु छिपे छिपे किसतरह पूजन अर्चन आदि करते हैं, कैसे निर्लज और दंभी हैं। इतना सुनते रहने पर भी, जैनी अपने आचरणोंको नहीं सुधारते।

जैनियोंके घरोंमें स्त्रियोंकी इतनी चलती है कि उनके साम्हने पुरुष मानों गुलाम ही हैं। कहावत है "जैनी अंधे हिन्दू काने, मुसलमान सुजाखे"। और बात भी ठीक है—अपने शास्त्रों द्वारा सुदेव, कुदेव, सुगुरु, कुगुरुका स्वरूप सुनने समझने पर भी खोटे मार्ग पर चलते हैं, इसी लिये जैनी अंधे हैं। हिन्दू काने यों हैं कि बिना समझे लकीरके फकीर बने सब देवोंको मानते पूजते हैं, केवल जैन धर्मसे दूर जाते हैं। अपने ही शास्त्रोंमें लिखे हुए ऋषभावतारकी भी निन्दा करते हुए कहते हैं "हस्तिना पीड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैन-मन्दिरम्" अर्थात् हाथीके पैरके नीचे दबकर मर जाना भला, पर जैन मन्दिरमें जाना अच्छा नहीं। उनके ऐसा कहनेका यही प्रयोजन है कि अगर लोग जैन मन्दिरमें जाकर अर्पेक मार्गको अच्छी तरह समझ जायंगे तो हिन्दू धर्म परसे उनकी श्रद्धा उठ जायगी। और मुसलमान सुजाखे इस तरह हैं कि, अपने इष्ट, सिवाय एक खुदाके, दूसरेको मानने पूजनेका विचार स्वप्नमें भी नहीं करते। वे साफ साफ कहते हैं—'जिसके ईमानमें फर्क है उसके बापमें फर्क है"। इन बातोंसे जाना जाता है कि जैनी लोग हाथमें दीपक लिए हुए जान बूझकर कुएमें गिरते हैं।

जैनियोंकी स्त्रियोंमें यह खूब देखा जाता है कि, उन्हें जैसे

ही कोई पीड़ा हुई कि, फौरन ओझा और जोगियोंकी पुकार हुई । वे लोग भी, कोई तो पीतरोंकी कुनट, कोई भूत प्रेत या चुडेलका लगना, और कोई शनैश्चर आदिका प्रकोप बताते हैं; और मनमाना लूटते खसोटते हैं . भोली स्त्रियां भी पाखंडियोंके पाखंडमें आजाती हैं और शीतला, भैरु, महादेव आदिको नाना प्रकारसे पूजतीं, बदमाशोंको माल खिलातीं और उनसे बिगड़ती हैं । अंडे चढ़वातीं, दूसरोंसे बलिदान करवातीं, कबरस्तानोंकी मानता मानतीं और ताजियोंको रेवडी चढ़ाती हैं । तावीज बंधवातीं, भभूत खातीं और न जाने क्या क्या दंडे डोरे करवाया करती हैं । गनीमत थो, यदि वे इससे सुखी भी होतीं, पर ऐसा नहीं होता है . इस तुच्छ भ्रमजालमें पड़कर वे केवल दुःखी ही और होती हैं । यदि जरा भी विचारशक्तिको काममें लावे तो स्वयं सोच सकती हैं कि ये तुच्छ देव, गुरु जब स्वयं ही दुखी हैं, तो दूसरोंके दुखको क्या दूर करेंगे । और फिर " होनहार होके रहै " सुख दुःख कर्मानुसार होते हैं, उसमें अंतर डालनेमें कोई भी समर्थ नहीं हैं ।

हिन्दुओंके यहां एक कहावत कही जाती है और वह यह है:—

देवी दुरगा सेढ़ शीतला, सब मिल हरिपै आय ।
बोली हरि ! सब तुमको पूजें, अब हम कैसे खांय ॥
तब हरिजी झट यों उठ बोले, भूमण्डलमें जाओ ।
जिस घर मेरो नाम नहीं है, उसको लूटो खाओ ॥

जिससे मालूम होता है कि हिन्दू लोग भी और खासकर समझदार

हिन्दू लोग इन्हें—देवी देवताओंको—नहीं मानते। कोई जैन धर्मके तत्त्वको न समझनेवाली स्त्री यहां कह सकती है कि बालबच्चेवाले आदमी यदि ऐसा न करें तो चल नहीं सकता। हम ऋषि मुनि तो हैं ही नहीं जो सब त्याग कर बैठ जांय। बालबच्चोंका साथ है, यदि दुर्गा और शीतला आदिको न मानें तो उनकी—बालबच्चोंकी रक्षा कौन करे? उनसे मैं पूछता हूं कि, देव देवियोंके पुजारियोंकी—उन स्त्री पुरुषोंकी, जिनकी नाक देवी देवताओंके आगे नमस्कार करतेर रगड़ गई है—घिस गई है, संतति (बालबच्चे) क्यों मर जाती हैं? माता शीतलाके पूजनेवाले बड़ी भक्ति करनेवाले स्त्री पुरुषोंके बालबच्चे माताकी ही बीमारीमें क्यों मर जाते हैं? क्या शीतला उनकी रक्षा नहीं कर सकती? (हां वास्तवमें नहीं कर सकती।) तो फिर पूजा पाठ किस लिए? अच्छा, अब दूसरी तरहसे सोचो। अंग्रेज, मुसलमान और दूसरे २ वे मनुष्य जो देवी देवताओंको नहीं मानते, नहीं पूजते, उलटी उनकी निन्दा और अविनय करते हैं, उनकी सन्तान क्यों भली चंगी रहती हैं? शीतलाके रोगसे अच्छी क्यों हो जाती हैं? सबकी सब मर ही क्यों नहीं जातीं? क्योंकि देवी तो उन पर नाराज ही होगी। मेरी भोली और मूर्ख बहिनो? जो कुछ भी अच्छा या बुरा होता है सब अपने भाग्यसे, सब अपने शुभ या अशुभ कर्मके फलसे। कोई देवी, देवता, पीर, पैगम्बर, कोई क्षेत्रपाल या कोई तीर्थंकर, तुम्हारे भाग्यको बदल नहीं सकता। अपने कर्मोका बुराभला फल तुम्हें देखना ही होगा, भोगना ही होगा। उसको कोई भी टाल नहीं सकता।

प्राकृत पिङ्गल सूत्र २ परिच्छेद १०२ में कहा है:—

पाण्डव वंसहिं जन्म करीजे ।
संपअ अज्जिम धम्मक दीजे ॥
साउजुहिट्ठि संकट पाआ ।
दैविक ललिअ केणं मिटाआ ॥

अर्थ—पांडववंशमें जन्म लेनेवाले, उत्तम सम्पदा और धर्मके धारण करनेवाले युधिष्ठिर सरीखे महाराज भी जब संकटको प्राप्त हुए, तो कहिए भाग्यको कौन मेट सकता है ? स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षामें कहा है—

आउक्खयेण मरणं, आउ दाऊण सक्कदे कोवि ।
तह्मा देविन्दो विय, मरणाउ ण रक्खदे कोवि ॥ १ ॥

अर्थ—आयु कर्मके क्षय होनेसे मरण होता है । आयुकर्म देनेको कोई समर्थ नहीं है । इसी कारण देवपति इन्द्र भी किसीको मृत्युसे नहीं बचा सकता ।

और भी देखिए । भगवान आदिनाथ—प्रथम तीर्थङ्कर, कर्मभूमिके प्रवर्तक ब्रह्मा, भरत चक्रवर्तीके पिता और इन्द्रादि देवोंके पूज्य थे, वे भी अन्तराय कर्मके प्रबल उदयसे छः महिने तक निराहार विहार करते रहे । परम पुरुषोत्तम रामचन्द्रको वनवास और सरला सीताको वियोग प्राप्त हुआ । इसी प्रकार नवम नारायण श्रीकृष्णकी उत्पत्तिके समय न तो किसीने गाया, और न मृत्यु समय किसीने रुदन ही किया । इन दृष्टान्तोंसे जान पड़ता है कि जैसे अच्छे और बुरे कर्म किए जाते हैं, उनके अच्छे या बुरे फल स्वयमेव मिलते ही हैं । जो स्त्रियां इतना जानकर भी योग्य उपाय नहीं करतीं वे दीपक हाथमें लेते हुए कुएंमें गिरती हैं । कैसी मूर्खताभरी बातें हैं कि बच्चोंको शीतला

निकलनेपर इलाज तो करती नहीं, करती क्या हैं ? माता—दुर्गाके गीत गाती हैं, उन्हें पूजती हैं; पूआपूरी ले और माथेपर अंगीठी रख माताके मठमें, इसे मनाने जाती हैं; दण्डवत् करते करते मठ तक दौडती हैं। उन्हीं अपनी मूर्ख बहिनोंके लिए, माताकी बीमारीकी उत्पत्ति संक्षिप्तमें लिखता हूं। आशा है वे अपनी अज्ञानता और कुदेवादिका पूजन—भजन छोडेंगी।

प्रकट हो कि माताके पेटकी गर्मीका कुछ अंश संतानमें आ जाता है। वही विकार ऋतु, खानपान या और कोई ऐसा ही कारण पाकर बालकके शरीरमेंसे चेचकके दानों—फुन्सियों द्वारा बाहिर निकलता है, जिसे लोग चेचक, भवानी, माता और शीतला आदि कई नामोंसे पुकारते हैं। यह केवल शारीरिक विकार है। किसी देव देवीका कोप नहीं है। इसके लिए लोग टीकाको अच्छा उपाय बताते हैं। कभी कभी टीकेकी सामग्री अच्छी न होनेसे जितना फायदा होना चाहिए, उतना नहीं होता। अर्थात टीका लगाने पर भी माताकी बीमारी कभी कभी निकल ही आती है।

इस बीमारीमें पहिले दो तीन दीन ज्वर आता है। फिर सिरसे फुन्सियोंका निकलना आरम्भ होता है और थोड़े दिनोंमें सारे बदनपर फुन्सियां हो जाती हैं। जब इस तरह चेचक निकलनेका हाल मालूम हो, तो घरमें कोई पकान्न न बनाना चहिए रोगीकी माताके सिवाय दूसरी रजस्वला स्त्रियोंकी दृष्टिसे उसे-माताके रोगीको बचाना चाहिए। सर्दटंडी—चीजें अधिकतर न खिलानी चाहिए किन्तु तर भोजन उसे देना चाहिए और सफाईके साथ रखना चाहिए। माताके गीत गा गा

करके अपने पुत्रको हाथसे न खोना चाहिए, या अन्धा, बहरा आदि न बनाना चाहिए। देखा गया है, कि इन दिनों बहुतेरी स्त्रियां इसलिए मंदिर नहीं जातीं कि, कहीं जिनेन्द्रके दर्शन करनेसे मातादेवी रुष्ट न हो जांय! चलो अच्छा हुआ। यों ही दर्शन करने, जाप्य देने और स्वाध्यायकी इच्छा नहीं थी, अब उसके लिए मूर्खतापूर्ण पूरा कारण (कहने सुननेमें) मिल गया। सच है "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः" अर्थात् जब बूरे दिन आते हैं तब बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है। सारांश यह कि यदि वे ही भोली स्त्रियां मंदिर जाएं, शास्त्र स्वाध्याय करें और विद्वानोंके व्याख्यान सुनें तो ऐसी मूर्खताओंमें न पड़ें; क्योंकि कर्तव्य अकर्तव्यका ज्ञान उन्हें उन्हीं बातोंसे-शास्त्र स्वाध्याय और धर्मोपदेशसे-होजाय व वे अपना भला और बुरा समझने लगें। कोई बाई प्रश्न करती है कि कुगुरु, कुधर्म और कुशास्त्रसे यदि कुछ नहीं होता तो फिर क्यों इतने मनुष्य उन्हें मानते हैं? इसका उत्तर यह है कि, बहुतसे आदमी यदि शराब पीते हैं तो कुछ शराबका पीना अच्छा नहीं समझा जा सकता। अथवा यदि बहुतसे आदमी चोरी करते हैं तो चोरीका करना अच्छा नहीं समझा जा सकता। कुदेवादिककी पूजन आदिका इसलिए विरोध है कि, उनकी पूजनसे राग द्वेष आदि दुर्भावोंकी वृद्धि होती है, जिससे पाप कर्मोंका बन्ध होता है, जो दुःखका कारण है। पर सुगुरु, सुदेव और सुधर्मकी पूजा-वन्दनासे विषय-कषाय घटकर परिणाम निर्मल होते हैं। जिससे पुण्य कर्मके बंधसे इष्ट सामग्रीका समागम होता है।

बालकोंके अज्ञानी, दुर्बुद्धि और अनाचारी होनेका एक कारण

कुसंस्कार भी है। जो स्त्रियां नीच व्यभिचारी और जगतके ठगनेवालोंके फन्देमें पड़ती हैं, वे अपना धर्म, कर्म, शील और श्रद्धान रूपी धन गमा बैठती हैं। आजकल साधु, फकीर, भट्टारक और ऐसे ही और श्रद्धा-भक्ति-भाजन व्यक्ति महा अवगुणोंकी खानि होरहे हैं—महा बने हुए होते हैं; अतः स्त्रियोंको चाहिए, कि स्वप्नमें भी इन लोगोंके पास न जावें, ये पाखण्डी और ठग लोग-ये रंग हुए लहैए ये बगलाभक्त जान बूझकर स्त्रियोंको बिगाड़ते हैं। ये लोग धर्मात्माओं सरीखे नाम और वेश रखके खूब माल खाते और मजा उड़ाते हैं। ये इंद्रियों और मनको वश करना तो दूर रहा, उलटे व्यभिचारके मजे चखते हैं और धर्मकी ओटमें चोट खेलते हैं, टट्टीकी आड़में शिकार करते हैं। धर्मबुद्धि और सच्ची स्त्रियोंके सामने इनकी दाल नहीं गलती। जब समाजका यह हाल है, तो क्यों न सारे दुर्गुणोंसे युक्त सन्तान होवे, परन्तु उन धर्मप्राण सच्ची स्त्रियोंकी सन्तान पुण्यके प्रभावसे सुशील, बलवान, गुणवान और विद्वान् होती है। धर्मके प्रभावसे ऐसी स्त्रियोंकी सन्ततिको रोग पीड़ा आदि भी नहीं होती, और जो होती, और जो होती भी है तो शीघ्र शान्त हो जाती है। पुरुषोंको चाहिये कि ऐसे ढोंगी मायावी लोगोंके पास अपनी स्त्रियोंको व बहिन बेटियोंको जानेसे बचावें।

धर्मात्माकी तो परछाईं मात्रसे दूसरोंके विघ्न, कष्ट, रोग और शोक दूर होजाते हैं। धर्मकी महिमा अचिन्त्य है। पद्मपुराणमें परम शीलवती श्री विशल्याकी कथा लिखी है कि, उसके पूर्व जन्मके जप, और शीलके प्रभावसे उसके स्नानोदकके—स्नान किए हुए पानीके

स्पर्शसे देशमें फैला हुआ मरी रोग शांत हो गया। उसीसे लक्ष्मणकी शक्ति और घायल सैनिकोंके घाव—कष्ट दूर हो गए—घाव भर गए। यह सब सम्यग्दर्शनका ही प्रभाव है। और सच भी है क्योंकि जिसे सम्यग्दर्शनके प्रभावसे मोक्षरूपी अक्षय सम्पदा प्राप्त हो जाती है—जन्म मरण जैसा अद्वितीय प्रबल रोग दूर होजाता है, तो साधारण शारीरिक रोगोंका कहना ही क्या है? इतनीसी बात ही क्या है।

इस प्रकार संसारमें भटकानेवाले मिथ्यात्वको छोड़, अर्हंत देव, निर्ग्रंथ गुरु और दयामयी धर्मको सेवन कर षट्द्रव्य, सप्त तत्त्व, नव पदार्थका स्वरूप जानो। आत्माके सच्चे धर्मका श्रद्धान कर सच्चा सुख पाओ। मनुष्य जीवनका यही लाभ है।

समयकी आवश्यकताके अनुसार स्त्रियोंको कुछ और भी शिक्षाएं यहां लिखी जाती हैं। आशा है, स्त्रियां ध्यान देंगी।

विद्याके अभाव और कुसंगतिके प्रभावसे जैन स्त्रियां भी ब्याह और पुत्र-जन्मके समय ऐसे बुरे गीत—सीठने—निर्लज्ज गालियां गाती हैं, जो उच्च जैनकुलके सर्वथा विरुद्ध है। सोचो तो कि जहां अपने माता पिता, सास श्वसुर आदि गुरुजन बैठा बैठी और जातिके जेठे नरनारी आदि बैठे हों वहां गालियां गाकर, उन फूहड़, कर्णकटु, सद्भाव नाशक और क्षुद्रता—व्यञ्जक शब्दोंकी धारा बहा कर, स्त्रियां क्या लाभ सोचती हैं? उन्हें कुछ लाज नहीं आती? जिन घरकी बहू बेटियां, और तो और, भर बाजारमें, सभी तरहके जेठे बड़े स्त्री पुरुषोंके साम्हने, कुछ भी संकोच न करें, यह कितने गजबकी बात है। बड़ी प्रसन्न हो होकर शुभाचरणी स्त्रियोंको गालियां देना—लांछन

लगाना- व्यभिचारिणी कहना, कितने दुःखकी बात है। यह केवल उन स्त्रियों या उनके पतियोंकी अज्ञानता है। इन निर्लज्जता भरे फूहड़ गीतोंके गानेका यही कारण मालूम होता है कि, आंखोंकी लाज या शरमको दूर करना, और शीलवान होते हुए भी ऐसे गायन गाकर अपने व्यभिचारपनेकी डोंडी (ढिंढोरा) पीटना जिस प्रकार कोई कुट्टनी (दूती) दो चार वेश्याओंको साथ बिठाकर, व्यभिचार-सेवनके भावसे, बुरे शब्दों द्वारा, आनेजानेवाले पुरुषोंको लुभाती है, उसीप्रकार एक बड़ी निर्लज्ज गानेवाली वृद्धाके निकट बहुतसी युवा स्त्रियां बैठकर, बुरे बुरे गीतों द्वारा अपना व्यभिचारपन प्रकट करती हैं, और छोटी छोटी पुत्रियोंके कोमल हृदयों पर अपनी इन बातोंसे बहुत बुरा प्रभाव डालती हैं।

विवाह सरीखे पवित्र कार्योंमें तो, इसका पूरा पूरा मौका मिलता है। फेरेके दिन पुरुष तो वरको साथ ले कन्या-पक्षके यहां फेरे फिराने चले जाते हैं, और यहां अवसर पाकर स्त्रियां, अपनी कौटुम्बिक सहेलियों और नीच जातिकी स्त्रियोंके साथ इकट्ठी हो, एक सुन्दर युवतीको पुरुषके वेषमें करके, उसका एक दूसरी स्त्रीसे काल्पनिक सम्बन्ध जोड़ती हैं। अथवा कभी कभी यह सम्बन्ध नहीं भी जोड़ती। केवल एक स्त्रीको बाबा बना देती हैं, और उसके साथ मनमानी कुचेष्टा करती हुई, अटूट और लबालब शृंगारके गीत गाती हुई, तथा ढोल बजाती हुई सारे बाजारमें फिरती हैं। इस कृत्यको देख और सुनकर लज्जाको भी लज्जा आती है।

धिक्कार है ऐसे लोगोंको, जो इन कृत्योंसे—इन घृणास्पद कार्योंसे

अपनी स्त्रियोंको नहीं रोकते। क्या कोई कह सकता है कि, ऐसे जाति, धर्म और लोकविरुद्ध कार्य करनेवाली स्त्रियां शीलवती रह सकती हैं? कदापि नहीं। उनमें किसी न किसी व्यभिचारका अंश तो जरूर होगा। अथवा यों कहिए कि, उनकी मूर्खता ही उन पर ये दोष आरोपित करवाती हैं। गीत गाओ, उनकी मनाई नहीं है। पर ऐसे गीत गाओ जो देश, जाति और धर्मके कल्याणका मार्ग बतावें; स्त्री-पुरुषोंको बुरे मार्गोंपरसे खींचकर अच्छे मार्गोंपर चलावें; और साथ ही उनके चित्तको भी प्रसन्न रखें।

व्याहके समय बहुतेरी स्त्रियां अज्ञानता और अन्धपरम्पराकी नीतिसे अथवा अन्य मतावलम्बियोंकी देखादेखी, देवी दिहाडी, चक्की, चूल्हा, देहली, गणेश, कुम्हारका चाक और गधे आदिको पूजतीं और साथ साथ निर्लज्ज गीत गाकर समझती हैं कि इन बातोंसे व्याह निर्विघ्न समाप्त होता है, यह उनका बड़ा भ्रम है। भला मूर्खतापूर्ण और अकार्योंसे कोई कब सफलता पा सका है? जो धर्मात्मा और बुद्धिमान हैं, वे जन्मसे मरण तकके सम्पूर्ण संस्कार शास्त्रानुकूल करके पुण्य-बन्ध करते हैं। जिससे अपने आप विघ्न आते ही नहीं। वे विवाहादिक संस्कारोंको भी शास्त्रानुकूल ही करते हैं। वर्तमानमें विवाह सम्बन्धी जो नेग या प्रथाएँ बुरी समझी जाती हैं उनकी वास्तविकताकी ओर दृष्टि देकर देखा जाय, तो जान पड़ता है कि सुरीतियां ही धीरे धीरे इस रूपमें आ गई हैं, जिन्हें अब हम बुरी और हानिकारक निगाहसे देखने लगे हैं। अगवानी (आतिशबाजी) शब्द हमें स्पष्ट बताता है कि, वर-पक्षकी बारातके आनेपर पेशवाई करना—स्वागत

करना ही अगवानी है। आश्चर्य नहीं कि, इस स्वागतकी प्रथामें कभी आतिशबाजी भी चलाई जाती रही हो। सो और आदरसत्कार तो गया। रही ये मुंह झुलसा देनेवाली और रुपयोंका धुआँ उड़ा देनेवाली आतिशबाजी। और क्या जाने किसी मनचले रईसजादेने ही, शायद इस हत्याकारिणी प्रथाको जन्म दिया हो। समयके फेरसे न जाने कितनी अच्छी प्रथाएँ अतीतके गर्भमें समा गईं; और उनके बदले कितनी ही नष्ट भ्रष्ट प्रथाएँ उन्हीं पूर्व प्रथाओंके बचे खुचे ईंट रोड़ेसे तैयार हो गईं। अथवा अनेकों नई प्रथाएं उत्पन्न हो गईं। उन्हींमेंसे अनेकोंके नाम भी अपभ्रंश होगए। किसी किसी देशमें विवाहके पूर्व कुम्हारके चकेकी पूजन की जाती है; क्या जाने, शायद इसका प्रयोजन सिद्धचक्र-यंत्रकी स्थापना हो! इसी यंत्रको भाँवर-फेरा-के पूर्व विवाह मण्डपमें लानेका नाम गणावना-विनायकी-है। और भी कई क्रियाएं ऐसी हैं जो अर्थका अनर्थ होगई हैं; यदि उनके विषयमें छानबीन की जावे तो वे कोई अच्छी प्रथाएं (आरम्भमें) निकलेंगीं। चतुर व्यक्तियोंको चाहिए कि वे प्रत्येक कार्यका यथार्थ-वास्तविक स्वरूप ही जानकर ठीक रीतिसे व्यवहार करें। विवाह आदिमें भोजन वगैरह शुद्ध सामग्री तैयार कराने और पानीके छाननेका पूरा यत्न रखना चाहिए जिससे उत्तम जातिका आचार नष्ट न होने पावे। विवाहमें कभी भी कुप्रवृत्तियोंके बढ़ानेवाले, अनर्थ-दंडरूप, लज्जाजनक, लोक-निंद्य, भण्ड गीत भूलकर भी न गाये जायें। ऐसे गीतोंसे शीलमें दूषण लगता है, लोग निंदा करते हैं कि ये उच्च जातिकी निर्लज्ज स्त्रियां गली गली कैसी निंद्य गालियां बक रही हैं और अपनी जाति तथा

धर्मको लाञ्छन लगा रही हैं। जो बुद्धिमान स्त्रियां अपने लोक परलोक सुधारना चाहतीं हैं; वे ये भंडगीत गाना और अन्य मिथ्यात्व—सेवन कुछ भी निंद्य कार्य्य नहीं करतीं। शुभ क्रियाएं करती हैं और सुंदर बोधप्रद और धार्मिक गीत गाकर पुण्य लाभ लेती हैं, जिससे उनका, उनके कुलका और उनके धर्मका यश जगतमें फैलता है।

षष्ठम प्रकरण।

विधवाओंका कर्त्तव्य-कर्म।

नरभव यौवन, धान्य धन्य, अरु विवेक विज्ञान।
पाय धर्म सेवन करहु, काटहु कर्म सुजान॥

जो कदाच दुख आ परै, तो न करहु कछु सोग।
पूरव करनी विधि करी, धरि धीरज फल भोग॥
धर्म—कर्ममें अटल रहु, कटैं पूर्वकृत पाप।
पुण्यकर्म नूतन बंधे, सुख पावैं नित आप॥

इस पुस्तकमें स्त्रियोंके योग्य और तो प्रायः सब कुछ लिखा जा चुका है। केवल थोड़ासा यही उपदेश देना शेष रह गया है कि कदाचित् पाप—कर्मके उदयसे कोई स्त्री विधवा हो गई हो, तो उसे अपना शेष जीवन किस प्रकार व्यतीत करना चाहिए।

प्रकट रहे कि विवाह होने पर पुत्रकी संज्ञा पति, और पुत्रीकी संज्ञा स्त्री होजाती है, वे दोनों नियमानुसार जीवन-भरके लिए एक-

सूत्रमें बंध जाते हैं। ये दोनों यदि बुद्धिमान हैं, योग्य हैं. तो लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकारके सुखोंके पात्र होते हैं। इस जीवनमें ये केवल अपने कुटुंबका ही नहीं, वरन् अपनी जाति और देश तकका हित साधन करते हैं। इसलिए दम्पतिको अपने और पराये हितके लिए विद्वानोंके सिखानों पर चलना चाहिए, और उत्तम शिक्षाओंका प्रचार अपनी सन्तानमें करना चाहिए, ताकि वे धर्म और नीतिके मार्ग पर चलनेमें अग्रसर हों।

प्रत्येक गृहस्थीमें उसकी आय (आमदनी) से थोड़ा खर्च होना आवश्यक है। अर्थात् जहां तक हो सके आयका आधा भाग कुटुंब—निर्वाहमें और चौथाई भाग पुण्य—दान आदि परोपकारके कार्योंमें व्यय कर शेषकी बचत रक्खे, क्योंकि बचा हुआ द्रव्य अकस्मात् आए हुए मौकोंपर व्याह शादी और रोग आदिके समय बड़ा काम देता है। कहां कैसा, और कितना खर्च करना, और कहां न करना यह बात प्रत्येक स्त्री पुरुषको सीखना चाहिए। बचत करनेका प्रत्येक उपाय सीखना और उसका उपायोग करते रहना यह एक सुंदर कला है।

इससे अच्छे प्रकार खर्च चलाते हुए भी बचत की जा सकती है। यह सच है कि घरकी पूंजीसे ही बरकत होती और मौकेकी गरज सरती है। यदि बचत न रक्खी जाय तो वक्त पर दूसरेके द्वार-पर जाकर रुपया मांगना पड़ता है, जिससे प्रथम तो अपना अभर (भीतरी बात) खुलता और दूसरे आंखें कुछ नीची पड़ती हैं। औंधा सीधा व्याज देना पड़ता है और रुपया कर्जपर उठाना पड़ता है, जिसकी चिन्तामें रात दिन पड़े रहते और किसी भी तरह—पापकर्म

द्वारा भी–रुपये कमानेकी फिकर पड़ती है। कर्जदार आदमीकी साख प्राय: बाजारसे उठ जाती है, और उसे लोग उधार देनेमें संकोच करते हैं। बिरादरी, पुरा पड़ोस, अथवा गांव–परगांवके जो लोग तुम्हारी फिजूल खर्चीके समय वाहवाह करते थे, वही फिर आंख उठाकर नहीं देखते कि कहीं कर्ज न मांगने लगे, 'देख लेते हैं तो कतराके निकल जाते हैं। बात जो आ पड़ती है तो बातको बनाते हैं।"

फिर तो यही हाल होता है। बापदादों तककी प्रतिष्ठा धूलमें मिल जाती है और कभी कभी तो कर्जकी पोटली नाती पोतों तक जाती है। इसीलिये नीतिमें कहा है कि "तेते पांव पसारिये, जेती लम्बी सौर" जो व्यक्ति इस नीतिपर ध्यान देकर तदनुसार चलते हैं वे सुखी होते हैं। और जो नहीं चलते वे मौकेपर कर्जरूपी चक्करमें पड़ते हैं, और अपने जीवनको घोर दु:खमय बनाते हैं ब्याह शादीके समय, अथवा गमीके समय झूठी वाहवाही लूटनेके लिये हजारों रुपया बरबाद–व्यर्थ बरबाद कर देते हैं; घरमें न होनेपर कर्ज लेकर खर्च करते हैं; और फिर जन्मभर शोक और नालिश कुरकीके दु:ख उठाते हैं।

इसी शोक तथा दु:खसे जर्जरित होकर अकालहीमें कालके गालमें समा जाते हैं। इसी फिजूल खर्चीके कारण जैन जाति कंगाल होरही है। कुछ उंगलियों पर गिनने योग्य खातेपीते व्यक्तियोंको छोड़कर अधिकांश जैन जाति रोटियोंको तरस रही है। उनके दु:खमय जीवनकी कल्पना करते ही विचार होता है कि आज एक व्यापारी श्रीमान् जातिके अधिकांश पूत, पेटकी ज्वालामें किस तरह जल रहे हैं, अतएव प्रत्येक स्त्री पुरुषको इस शिक्षापर ध्यान देकर प्रामाणिक

खर्च करना चाहिए और एक चौथाई आय प्रतिमास बचाते रहना चाहिए। दम्पतिको धर्म और नीतिके अनुसार चलते हुए अपना गृहस्थाश्रम चलाना चाहिए।

यदि कोई स्त्री विधवा हो जाय तो अपने वय-प्राप्त पुत्रोंके आधीन रहे और उन्हींकी आज्ञानुसार चले। यदि कुटुम्बमें कोई पालन पोषण करनेवाला न हो तो उसे चाहिए कि अपने कुल और जातिके योग्य न्याय पूर्वक उद्योग करके अपना उदर निर्वाह करे और सन्तोष करके धर्ममें संलग्न रहे।

देखा जाता है कि कोई कोई स्त्रियां विधवा हो जानेपर महीनों, रोया करती हैं। माथा पीटतीं और छाती कूटती हैं, पर यह सब व्यर्थ है। उनका चिल्लाना सुनता कौन है? और फिर इस दुखको कौन ही दूर कर सकता है? रोना तो मानो केवल मूर्खता दर्शाना है। बहुत जगह पुरुष और स्त्रियां फेरेको आती हैं, और मृत-व्यक्तिका गुणानुवाद करके उस बेचारीको और रुलाती हैं, जिससे उसे तीव्र आर्त परिणामों द्वारा नर्क-आयुका बंध होता है।

विधवा स्त्रीका बाहर न निकलना ही किसी तरह अच्छा है परन्तु कारण-वश उसे निकलना ही पड़ता है। जैसे मंदिर आदिको। उसे विचारना चाहिए कि पूजन, अर्चन, दर्शन और शास्त्र-पठन-भजन ही तो पाप और दुःखके दूर करनेवाले हैं। फिर मूर्खोंके कहनेमें लगकर दर्शन आदि करनेको न जाना क्या सयानपन है? खाने-पीने, लेन-देन आदि सांसारिक काम तो छूट ही नहीं सकते, होते ही हैं, परन्तु धर्मके लिए कोई प्रेरणा करनेवाला नहीं है। यदि

तुम उसे भुला दो तो भले भुला दो, पर धर्मको भुलाकर तुम अपना दुःख दूर नहीं कर सकती, प्रत्युत बढ़ाती ही हो ।

राजा राणा छत्रपति, हथियनके असवार ।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी वार ॥ १ ॥
दलबल देवी देवता, मात पिता परिवार ।
मरती विरियां जीवको, कोई न राखनहार ॥ २ ॥
आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय ।
यों कबहूं इस जीवको, साथी सगा न कोय ॥ ३ ॥
जगवासी घूमे सदा, मोहनींदके जोर ।
सरवस लूटे सुधि नहीं, कर्म चोर चहुं ओर ॥ ४ ॥

अनेकों विधवाएं कुसंगतिमें पड़कर अथवा अपना बुरा वातावरण देखकर, अपने धर्मको भूल जाती हैं—सत्यसे डिग जाती हैं जिससे वे अपने दोनों कुलोंका नाम डुबाती हैं। और पुनर्लग्न—विधवा विवाह करके जन्म जन्मको वैधव्यका बीज बोती अथवा गुप्त व्यभिचार करती हैं, भ्रूण हत्याएं करती हैं अथवा कभी २ बालहत्या तक कर डालती हैं, तब लोग इनकी ओर अंगुली दिखा दिखाकर कहते हैं कि, यह अमुककी बहू बेटी है; इसने भ्रूण हत्या आदि की है। ऐसी कुटिलाएं अनेक सुंदर भड़कीले वस्त्राभूषण पहिनतीं और तरह तरहके तर पदार्थ और मिष्टान्न खाती हैं जिससे कामेच्छा बढ़ती है। नाना भांतिके श्रृंगाररससे चुहचुहाते गान गाती हैं और बड़े मजे और शौकसे वह घृणित कार्य करती हैं जो कलमसे नहीं लिखा जा सकता ।

नतीजा इसका यह होता है कि, अगले जन्ममें इस पापके दण्ड भोगनेके सिवाय यदि स्त्री देह मिली तो पुनः युवावस्थामें ही विधवा होना पड़ता है। जो अच्छे घरोंकी बहु बेटियां हैं वे ऐसे दुष्कर्म नहीं करतीं, और न ऐसी स्त्रियोंका साथ करती हैं। वे बड़े ही धैर्यसे इस कर्मफलको–इस पति वियोगके दुःखको सहती है। और सहना ही चाहिये। कर्म फलका उदय अमिट है। प्राणी पंच पापोंसे लिप्त होते या लिप्त रहते हुए तो इसका कुछ खयाल नहीं करता, पर जिस समय उनका उदय आता है इष्टका वियोग और अनिष्टका संयोग होता है–तो हाय हाय करता है।

परन्तु इस समय हाय हायसे दुःख घटनेका नहीं, उलटा बढ़ता है। उसे तो–कर्म फलको–संतोष और प्रसन्नताके साथ भोग लेनेमें ही सार है। इस समय सोचना चाहिये कि पाप-कर्मका उदय मेटनेको कोई समर्थ नहीं है। अंजना जैसी सती पूर्व पापके उदयसे २२ वर्ष तक पतिकी अवहेलना–तिरस्कार सहती रही; कुटुंबियोंने ही व्यर्थका कलंक लगाया; गर्भावस्थामें ही पहाड़ और जंगल जंगल भटकना पड़ा–अनेक कष्ट सहे। सीता जैसी पतिव्रताको झूँठा कलंक लगाया गया; उसे पतिकी ही आज्ञासे नगरसे निकल बनमें जाना पड़ा; और इस पर भी दुःखका अन्त न आया, अपने शीलकी परीक्षा देनेको अग्नि–कुंडमें प्रवेश करना पड़ा।

अनेक महान व्यक्ति पापके उदयसे राजासे रंक और शूरसे कूर होगये; तो हम सरीखोंकी तो बात ही क्या है? विचारना चाहिए कि, कदाचित मैंने पूर्वभवमें जिनेन्द्रके प्रतिबिम्बका अनादर किया

होगा, अविनय किया होगा; जिनमंदिर या चैत्यालयके उपकरण चुराए होंगे, निर्माल्य भक्षण किया होगा, अशुद्धिकी अवस्थामें माननीय पूज्य पुरुषों या ऋषियोंको भोजन कराया होगा; उसी अवस्थामें शास्त्र छुए होंगे व मंदिर गई होंगी, मंदिरमें अशुद्ध द्रव्य चढ़ाया होगा; जिन मंदिरमें प्रमाद, मूर्खता या कोई कुचेष्टा की होगी; मुनिदानमें अन्तराय डाला होगा; सच्चे धर्मात्माओंकी झूठी निन्दा की होगी; झूठी चुगली खाई होगी; किसीको झूठा कलंक लगाया होगा; मिथ्यात्व सेवन किया होगा; हिंसाके कार्य किये होंगे, जेठ पुरुषोंका—माननीय पुरुषोंका अपमान किया होगा; अभक्ष्य भक्षण किया होगा; प्रतिज्ञा भंग की होगी; आशय यह कि, अनेक प्रकारसे पाप कमाया होगा; तभी तो यह पतिवियोगका दुःसह दुःख सहना पड़ रहा है।

अब मेरा यही कर्तव्य है कि, धैर्य धारण करके इस विपत्तिको विना किसी संकल्प विकल्पके भोगूं और आगेके लिये सावधानीसे धर्ममें तत्पर होऊं। यदि धर्ममें तत्पर न होऊंगी तो न जाने आगे मेरी क्या दुर्गति होगी, न जाने कैसे दुःख भोगने होंगे ? अब तो मैं धर्मकी शरण हूं, क्योंकि वही दुःखसे पार करनेवाला और भव भवमें सुख देनेवाला है।

ऐसा ही विचार करके अशांतिकी ओर अपने विचारोंको न ढुलने देवे दान, व्रत, तप, नियम, पूजन और स्वाध्याय पूर्वक अपनी आयु पूर्ण करे। सांसरिक विषयोंसे—पंचेंद्रियोंके विषयोंसे—दूर रहे। अपनी इंद्रियों और मनको वश करे। स्त्रीको शृंगार करना सधवा होनेपर ही शोभा देता है। विधवाका शृंगार धर्म—विरुद्ध, लोक—निंद्य

और शीलका घातक है। विधवा अयोग्य वस्त्राभूषण धारण न करे। सधवाओं जैसे चटकदार कपड़े और गहने न पहिने। अंजन आदि न लगावे। पान, इलायची और केशर आदि पुष्ट और कामोद्दीपक मसाले न खावे। माथेपर तिलक बिंदी रोरी न लगावे। बालों या कपड़ोंमें तेल या इत्र न लगावे। दूध, दही, घृत, मोदक आदि गरिष्ट और पुष्टिकारक भोजन अधिक परिमाणमें न खावे, क्योंकि इससे इंद्रियां प्रबल होकर अपने २ विषयोंकी ओर खींचती हैं। यदि ये अथवा ऐसे ही और पदार्थ बिलकुल न खाये जावें तो अच्छा है। किसी स्त्री या पुरुषसे हंसी तमाशे और कौतूहल आदि क्रिया न करे। नाटक, सिनेमा, स्वांग, रहस, भांडोंके कौतुक और मेलों तमाशोंमें न जावे। बुरे गीत न गावे और बुरे वार्तालाप न सुने। सधवाओंके सधवापनके चिह्नोंकी—अलंकार आदिकी इच्छा न करे नीचेकी कविताको सोचे व समझे—

दुख औ सुखके बीचमें, पछतावे क्यों कूर।
माशा बढ़ै न तिल घटे, जो कुछ लिखा अंकूर॥
पूरब भोग न चितवै, आगम बांछा नाहिं।
वर्तमान वर्तै सदा, सो सुखिया जगमांहि॥

एकासना, उपवास, नीरस भोजन, बेला तेला आदि उपाय द्वारा इन्द्रियोंके वेगको रोकें—उन्हें वश करे। पूजा, दान, स्वाध्याय, पठन पाठन और धर्मध्यान आदि शुभ कार्योंमें अपना समय लगावे, जिससे पुण्य बंध हो और दुःखकी कुछ शांति हो। मतलब यह है कि जो स्त्रियां समता भाव धारण कर सदा धर्मध्यान करती हैं, और अन्तिम समय समाधिमरण करती हैं, वे फिर स्त्री पर्याय धारण नहीं

करतीं। वे मरकर स्वर्गमें महर्द्धिक देव होतीं, मध्यलोकमें राजा महाराजा होतीं और फिर मुनिव्रत धारण कर कर्मका नाश करके मोक्षके अनंत, अनुपम, अक्षय अलौकिक और अप्रमेय सुखको प्राप्त करती हैं।

विधवा स्त्रियोंको परिग्रहका प्रमाण करके रहना चाहिये; भूषण न पहिरना चाहिये; कपड़ोंसे अंग ढंके रखना चाहिये, सिर ढंके रहना चाहिये; खाटपर न सोना चाहिये, अंजन न लगाना चाहिये; हलदीका लेप न करना चाहिये; शोक व रुदन न करना चाहिये; कामसेवन, राज्य व चोरकी कथा कहानी न कहना चाहिये, परन्तु श्राविकाश्रमों द्वारा ज्ञान लाभ करके अपने और पराये हितमें लगना चाहिये। विद्याहीन जैन स्त्री समाजको शिक्षित करनेके लिये हजारों अध्यापिकाओंकी आवश्यक्ता है। यदि विधवाएं इस कामको हाथमें ले लें तो उनका जीवन सच्चे परोपकारमें लग सकता है; उनके व्यर्थ जीवनसे बड़ा उद्देश्य सिद्ध होसकता है। समाज सेवा करनेसे उनका जीवन दिव्य जीवन बन जा सकता है। अमेरिका आदि देशोंमें ऐसी अनेकों समाजसेविका विधवाएं हैं। भारतीय विधवाएं यदि स्त्री-शिक्षाका काम हाथमें ले लें, तो स्त्री जातिके सारे अज्ञान और कष्ट शीघ्र ही मिटा डाल सकती हैं। वे स्त्रियां धन्य हैं जो विधवा होनेपर इस प्रकार अपने और पराए हितमें तत्पर हो जाती हैं।

बहिनो, यह स्त्री पर्याय और जैन कुल तुम्हें किसी भाग्यसे मिला है। इस समयका एक भी क्षण तुम्हें व्यर्थ न खोना चाहिए। यदि दुर्भाग्यसे विधवा होगई हो, तो भी अपने परिणामोंको सम्हालके रक्खो। धर्मध्यानमें अपना समय बिताओ। यह पर्याय, समुद्रके

किनारे लगनेकी है। यदि इस समय तुम भूल गई-चूक गई तो ठिकाने लगना मुश्किल है। उठते-बैठते, खाते पीते, चलते-फिरते और प्रत्येक काम करते या न करते समय यह न भूलो कि हम मनुष्य हैं और हमारा काम धीरे धीरे कर्मोंके जंजालसे छूटना है।

मनुष्य पर्यायके विषयमें एक कविने कहा है—

जाको इन्द्र चाहैं अहमिन्द्रसे उमाहैं जासों;
जीव मुक्ति जाय, भवमलको वहावे है।
ऐसो नर जन्म पाय खोयो विष विषै खाय;
जैसे कांच साटे मूढ़ माणिक गमावे है।
माया नदी बूड भीजा, काय बल तेज छीजा,
आया पन तीजा अब कहा बन आवे है।
तातें निज शीश ढोलें, नीचे नैन किये डोलें;
कहा बढ़ बोलें वृद्ध वदन दुरावै है॥ १॥

* * * *

जोई क्षण कटै सो तो आयुमें अवश्य घटे,
बूंद २ बीते जैसे अंजलिको जल है।
देह नित क्षीण होत नैन तेज हीन होत;
यौवन मलीन होत बीच होत बल है।
आवै जरा वेरी तकै अतक जहेरी आवे;
परभौ नजीक जात परभौ निफल है।

मिलके मिलापी जब, पूछत कुशल मेरी;
ऐसी दुर्दशामें मित्र, काहेकी कुशल है ॥ २ ॥

* * * *

काहू घर पुत्र जायो काहूके वियोग जायो;
कहू राग रंग कहूं रोयारोय करी है।
जहां भानु ऊगत उछाह गीत गान देखे;
सांझ समै ताही थान हाय हाय परी है।
ऐसी जग रीतिको न देख भयभीत होत;
हा हा नर मूढ़ तेरी मति कौने हरी है।
मानुष जनम पाय, सोवत विहाय जाय;
खोवत करोरनकी एक एक घरी है ॥ ३ ॥

* * * *

देखो भर यौवनमें पुत्रको वियोग भयो;
तैसे ही निहारी निज नारी कालमगमें।
जे जे पुण्यवान जीव दीसत हैं जगमाहिं;
रङ्क भये फिरें तिन्हें पनहीं न पगमें।
ऐसे पै अभाग, धन जीतबसे धरै राग;
होय ना विराग जानै रहूंगो अलगमें।
आंखिन विलोके अन्ध सुस्सेकी अंधेरी करै;
ऐसे राज—रोगको इलाज कहां जगमें ॥ ४ ॥

ऐसी हम संसारी जीवोंकी भ्रम—बुद्धि और अज्ञान—दशा देख श्रीगुरु करुणा करके इस प्रकार समझाते हैं:—

जौलों देह तेरी काहू रोगने घेरी, जौलों;
जरा नाहि नेरी जासों पराधीन पर है।
जौलों जम नामा बैरी देय न दमामा तौलों;
माने आन रामा बुधि जाय न बिगर है।

तौलों मित्र मेरे ! निज कारज संभार लेरे;
पौरुष थकैगो फिर पिछे कहा करिहै।
अहो आग आये जब झोपड़ो जरन लागे;
कूपके खुदाए कहो कहा काज सरहै ॥ ५ ॥

इसलिये हे जाति–सुधारक भाइयो और बहिनो ! ऐसा यत्न करो जिससे समाजकी ये विधवाएं अपने निस्सार जीवनको उपयोगी जीवन बना डालें। मनुष्य या स्त्री जन्मका कर्तव्य समझें। मिथ्यात्व और प्रमाद छोड़ धर्ममें तत्पर होवें और अपना अगला जन्म मंगलमय बनावें। यदि ये अभी आत्मकल्याण न करेंगी तो पीछे पछताना होगा और दुःखमें पड़ना होगा।

मानुष तन श्रावक कुलहि, पावो दुर्लभ फेर।
यह अवसर मत चूकियो, सद्गुरु भाषें टेर ॥

सप्तम प्रकरण।

सूतक निर्णय।

मृतकं वृद्धिहानिभ्यां, दिनादि दश द्वादशे।
प्रसूतिस्थान मासैकं, दिनानि पंच गोत्रिणाम् ॥

अर्थ—जन्मका सूतक १० दिनका और मृत्युका १२ दिनका होता है। प्रसूति स्थानको १ माह और गोत्रके मनुष्यको ५ दिनका सूतक होता है।

प्रव्रजिते मृते काले, देशांतरे मृते रणे।
सन्यासे मरणे चैव, दिनैकं सूतकं भवेत् ॥

अर्थ—जो गृहत्यागी दीक्षित विदेशवासी या सन्यासी मरे अथवा जिसने संग्राममें प्राण छोड़ा हो तो इनका १ दिनका सूतक मानना चाहिये (यदि अपने कुलका हो तो।) यदि अपने कुलका कोई विदेशमें मरा हो और १२ दिन पीछे खबर मिले तो १ दिनका सूतक मानना चाहिये। यदि १२ दिनके पहले खबर मिले तो १२ दिन पूरे होनेमें जितने दिन बाकी रहे हों उतने ही दिनका सूतक माने।

चतुर्थे दशरात्रि स्यात्, षड्रात्रि पुंसि पंचमे।
षष्ठे चतुराशुद्धिं, सप्तमे च दिनत्रयं ॥
अष्टमे पुंस्यहो रात्रि, नवमे प्रहरद्वयं।
दशमे स्नानमात्रं स्यात, एतद्गोत्रस्य सूतकम् ॥

अर्थ—तीन पीढ़ी तक १२ दिन, चौथी पीढ़ीमें १० दिन, पांचवीं पीढ़ीमें ६ दिन, छठवीं पीढ़ीमें ४ दिन, सातवी पीढ़ीमें ३ दिन, आठवीं पीढ़ीमें १ दिन—रात्रि, नवमी पीढ़ीमें २ पहर और दशवीं पीढ़ीमें केवल स्नान न करने तक सूतक जानना चाहिये।

यदि गर्भे विपत्तिः स्यात् श्रवणां चापि योषितां।
यावन्मांसस्थितो गर्भस्तावद्दिनानि सूतकम् ॥

अर्थ—स्त्रीका गर्भ पतन हो तो जितने मासका गर्भ हो उतने दिनका सूतक पालना चाहिये।

पुत्रादि सुतके जाते, गते द्वादशके दिने।
जिनाभिषेकपूजाभ्यां, पात्रदानेन शुद्धयति ॥

अर्थ—पुत्रोत्पत्ति आदिके सूतकसे १२ दिन उपरांत भगवानका अभिषेक, पूजन तथा पात्र—दान करनेके पीछे शुद्धि होती है। (यहां सूतक शब्दसे जन्म, मरण दोनोंके सूतक समझना चाहिये।) कभी कभी जन्मका १० दिनका और मरणका १२ दिनका सूतक माना जाता है।

अश्वा च, महिषी, चेटी, गौः प्रसूता गृहांगणे।
सूतकं दिनमेकं स्यात्, गृहबाह्ये न सूतकं ॥

अर्थ—घोड़ी, भैंस, दासी, गौ आदि जो अपने घरके आंगनमें (घरके भीतर) जनें; तो १ दिनका सूतक होता है। जो गृह बाहिर जनें तो सूतक नहीं लगता है।

सतीनां सूतकं हत्या पापं षण्मासकं भवेत् ।
अन्या सामान्यहत्यानां, यथा पापं प्रकाशयेत् ॥

अर्थ—अपनेको अग्निमें जला लेवे, ऐसी सती होनेका पाप (सूतक?) ६ मासका होता है। और हत्याओंका पाप (सूतक?) भी यथायोग्य जानना चाहिए ।

दासीदासस्तथा कन्या, जायते म्रियते यदि ।
त्रिरात्रि सूतकं ज्ञेयं गृहमध्ये तु दूषणम् ॥

अर्थ—जो दासी, दास तथा कन्या जन्मे या मरे, तो ३ रात्रिका सूतक है । यदि गृहके बाहिर हो तो सूतक नहीं होता है । (यहां मृत्युकी मुख्यतावश ३ दिनका सूतक कहा है ।)

महिष्याः पक्षकं क्षीरं, गोक्षीरं च दशो दिनं ।
अष्टमे दिवसे जाया, क्षीरं शुद्धं न चान्यथा ॥

अर्थ—जननेके बाद भैंसका दूध १५ दिनमें, गायका दूध १० दिनमें और बकरीका दूध ८ दिनमें खाने योग्य शुद्ध होता है ।

श्लोक—जातदन्तशिशोर्नाशे, पित्रोर्दशाह सूतकं ।
गर्भस्रावे तथा पाते, विनष्टे तु दिनत्रयं ॥

अर्थ—जिस पुत्रके दांत आगये हों उसके मरणका सूतक १० दिनका, और गर्भस्राव तथा गर्भपात और विनाशका सूतक ३ दिनका है ।

त्रिपक्षे शुद्ध्यते सूती, दिने पंच रजस्वला ।
परपुरुषरता नारी, यावज्जीवे न शुद्ध्यति ॥

अर्थ–जिस स्त्रीके बाल बच्चा हुआ हो वह डेढ़ महिनेमें, और रजस्वला ५ दिनमें शुद्ध होती है, परन्तु व्यभिचारिणी स्त्री कभी शुद्ध नही होती । सदा अशुद्ध–अस्पर्श्य रहती है ।

करि सन्यास मरे जो कोय, अथवा रणमें जूझो होय ।
देशान्तरमें छोड़े प्राण, बालक तीन दिवस लौं जान ॥
एक दिवस हो इनको सोग, आगे और सूनो भविलोग ॥
प्रौढ़ा बालक दासी दास, अरु पुत्री सूतक इमि भास ॥
दिवस तीन लौं कह्यो बखान, इनकी मर्य्यादा इमि जान ॥

भावार्थ–८ वर्ष तकके बालकका ३ दिनका सूतक जानो। देशपद्धति रूढ़ि–से इसमें कितने ही मतभेद हैं, इसलिये देशपद्धति–रूढ़िसे इसका पालन करना चाहिये ।

ग्रंथकर्ताका परिचय ।

कवित्त–दिल्ली सेती पश्चिम ठाम, बसे है गन्नोर गाम;
ताको वासी जयदयाल जैनी इक जानिये ।
कर्महीसे राखे प्रीत, गहै नहीं दूजी रीति;
अग्रवाल गोयल गोत्र, मंद बुद्धि मानिये ।

श्रावक धरमसार, तामें लख हीनाचार;
कीन्हीं यो विचार, नारी धर्मजु वखानिये ।
लखि मोही ज्ञानहीन, क्षमो गुणीजन प्रवीण;
लीजिये सुधार अरु, भूल चूक छानिये ॥ १ ॥

दोहा–लाला गंगा विष्णुसुत, रामनाथ अरमाल ।
तसु सुत हरपरसादमल, ता सुत यह जयदयाल ॥ १ ॥
विक्रमाब्द उन्नीश शत, ठावन ऊपर जान ।
पौष शुक्ल दोयज तिथी, धनराशी परमान ॥ २ ॥
पुस्तक पूरण है करी, क्षमियो चूक सुजान ।
पढ़ो सुनो औ आचरौ, तो पाओ सुखथान ॥ ३ ॥

॥ इति ॥

शान्तिः   शान्तिः   शान्तिः